पंचम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में अभिव्यक्त अन्य प्रमुख विषय

स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में हाशिये की अस्मिताएं खासकर स्त्री अस्मिता एवं दलित अस्मिता देखने को मिलती है। इन उपन्यासों में विशेषकर मुस्लिम समाज की दयनीय स्थिति को दिखाया गया है। आजादी के बाद से मुस्लिम अल्पसंख्यकों को भारत में हाशिये पर धकेल दिया गया है। उनकी भारतीयता पर प्रश्न चिन्ह लगाया जाता रहा है परन्तु कभी उस समाज के दलितों, वंचितों के ऊपर ध्यान नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप मुस्लिम दलित हाशिये का शिकार होता गया और मुख्य धारा से हमेशा कटा ही रहा। तत्कालीन मुस्लिम उपन्यासकारों ने अल्पसंख्यकों की बात तो अवश्य की परन्तु हाशिये की अन्य अस्मिताएं जैसे थर्ड जेंडर, आदिवासी आदि विषयों पर उनका ध्यान बहुत अधिक नहीं गया। शानी के उपन्यासों में आदिवासियों की समस्याओं का जिक्र तो अवश्य हुआ है परन्तु उनके समकालीन अन्य लेखकों में वह सिरे से गायब रहा है। विशेषकर मैंने जिन उपन्यासों को शोधकार्य में सम्मिलित किया है उन उपन्यासों में कहीं भी थर्ड जेंडर अथवा आदिवासी विमर्श पर कोई चर्चा नहीं हुई है। कुछ उपन्यासों में दलितों की बात ज़रूर हुई है परन्तु वह भी दाल में नमक के बराबर ही। सन् 1975 के बाद के उपन्यासों में दलित विमर्श में तेजी आई। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास 'झीनी-झीनी बिनी चदरिया', असगर वजाहत के उपन्यास 'सात आसमान', मेहरुन्निसा के उपन्यास 'बेघर', 'कोरजा' आदि में दलित मुस्लिम समाज का चित्रण हुआ है। 'झीनी-झीनी बिनी चदरिया' बनारस के निम्न वर्गीय बुनकर समाज की कथा को समेटे हुए है। दलित मुस्लिम समाज सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से समाज में हाशिये का शिकार अधिक है। उनकी स्थिति दलित हिन्दुओं जैसी ही है।

अन्य समाज की तरह मुस्लिम समाज में भी वर्गीय भेद देखे जा सकते हैं। मुस्लिम रचनाकारों के उपन्यासों में मुस्लिम समाज में व्याप्त वर्ग भेद उसी तरह से व्याप्त है जिस तरह से हिन्दू समाज अथवा अन्य समाज में व्याप्त है। मुस्लिम रचनाकारों के उपन्यासों में भारतीयता और लोकतंत्र के

प्रश्न को भी उठाया गया है। किसी समाज में रहने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आस-पास के रहने वाले लोग उसे शक की निगाह से न देखें। उसे समान रूप से जीने का अधिकार प्राप्त हो। अतः इस अध्याय में इन्हीं कुछ प्रश्नों पर विचार किया गया है।

5.1 हाशिये की अन्य अस्मिताएँ:

साधारणतः यही समझा जाता है कि मुसलमानों में जातिगत भेदभाव नहीं है। यह बात कुछ हद तक सच भी है क्यूंकि इस्लाम धर्म में हिन्दुओं की तरह कोई वर्ण व्यवस्था नहीं है। परन्तु भारतीय परिदृश्य में यह कहना कि मुस्लिम समाज जातीय भेदभाव से रहित है यह सच नहीं है। "आम तौर पर यही माना जाता है कि मुसलमान समाज समता (मसावत) के सिद्धांत पर आधारित है। उसमें ऊँच-नीच का विचार नहीं पाया जाता है। यही वजह है कि सभी मुसलमान तथा धर्माधिकारी यह कहते हैं कि सभी मुसलमान समान हैं। उनमें किसी प्रकार का सामाजिक और आर्थिक स्तरीकरण नहीं है।"[1] भले ही यह सच है कि मुस्लिम समाज में समता इस्लाम का मौलिक सिद्धांत है और वह कतई जातिवाद को स्वीकार नहीं करता है। इसके बावजूद भारतीय मुसलमान अपने सामाजिक जीवन में जातिवाद की उपेक्षा नहीं कर सके। कुछ लोगों का मानना है कि इस्लाम धर्म हिन्दू धर्म के बनिस्बत ज्यादा समतामूलक एवं न्यायपूर्ण है, जहाँ किसी प्रकार का जातिगत भेदभाव नहीं है। ऐसे लोग या तो अज्ञान है अथवा झूठे हैं। ऐसे लोगों को भारतीय परिस्थिति को देखने समझने की जरूरत है। भारत में कम से कम ऐसी कोई बात नहीं है जिससे इस्लाम धर्म को न्यायपूर्ण कहा जाए। इस्लाम के अंतर्गत ढेर सारी विषमतायें हैं। भारतीय मुसलमान के भीतर भी जातीय स्तरीकरण है। "भारतीय इतिहास की सच्चाई यह है कि यहाँ के मुसलमानों के दो बड़े वर्ग हैं- एक है विदेशी मूलवाले मुसलमान, दूसरा है- भारतीय मूल के मुसलमान। दोनों में जबरदस्त फर्क है-आर्थिक स्तर का, सामाजिक प्रतिष्ठा का तथा इस्लामी धर्मतंत्र पर प्रभाव का।"[2] दरअसल भारतीय मुसलमान पर हिन्दू रीति-रिवाज उनकी संस्कृति और जातीय भेदभाव का गहरा असर है। सामन्ती युग में जिन दलित हिन्दुओं ने हिन्दू धर्म छोड़कर

इस्लाम को यह सोचकर अपनाया कि वहाँ शांति, सद्भाव एवं मसावत के साथ रह पाएंगे लेकिन वह हो नहीं पाया। इसका कारण यह था कि जब ये धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने तो अपने साथ जातिगत संस्कार, स्वच्छ-अस्वच्छ व्यवसाय को भी लेते गएँ। इसके साथ ही मुसलमानों ने भी उनके साथ वही व्यवहार करना शुरू किया जो उनके साथ हिन्दू धर्म में होता आ रहा था। वहीं ऊँची जातियों वाले हिन्दुओं ने वर्चस्व पाने के लिए इस्लाम अपनाया और वे वहाँ भी अपना वर्चस्व कायम रखा। अतः निची जातियों के हिन्दुओं की स्थिति वही बनी रही। अर्थात धर्म परिवर्तन करने से भी जातीयता में कोई परिवर्तन नहीं आया। जातीयता का बीज दिमाग में पूर्वाग्रह के रूप में समाया रहता है जो किसी भी मिट्टी में जाकर अपने पूर्व रूप में अंकुरित हो जाता है। जो अपनी विशिष्ट पहचान, श्रेष्ठता बोध एवं व्यावसायिक के आधार पर फलती फूलती है। जातियों के बीच आपसी संघर्ष, उग्रता का भाव इन पूर्वाग्रहों को और घनीभूत करने में सहायक होता है। यही कारण है कि जब कोई धर्म परिवर्तन करता है तो उसके पहले की पहचान नहीं मरती। अतः धर्म परिवर्तन करने के बाद भी जाति उसी रूप में बनी रहती है।

मुसलमानों की यह जातीय व्यवस्था हिन्दू धर्म की तरह वैदिक काल से ही विद्यमान नहीं है। संभवतः इनके अन्दर जातीयता का भाव हिन्दू धर्म के संपर्क में आने के बाद का मसला है। हिन्दुओं के संपर्क में आने के बाद ही इनमें जातीय आधारित भेदभाव का विकास हुआ जो कालांतर में बड़े पैमाने पर देखा जाने लगा। जिस प्रकार हिन्दू धर्म में ब्राह्मण जो कि दक्ष थे अपनी कुटिल बुद्धि से अपने को श्रेष्ठ अर्थात ऊँची जाति के अन्दर रखा उसी प्रकार विदेशी नस्ल के लोग भी अपने को अगड़ी जाति घोषित किया एवं भारतीय मुसलमान एवं भारतीय परिवर्तित मुसलमान को पिछड़ी जाति के अंतर्गत रखा। इस प्रकार भारतीय मुसलमान के अन्दर जातीय भेदभाव में वृद्धि हुई। सच्चर कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार "भारतीय मुस्लिम में भी हिन्दू जातीय व्यवस्था के लक्षण जैसे कि सामाजिक समूहों की सोपानीकृत व्यवस्था, जाति के अन्दर ही विवाह और वंशानुक्रमिक व्यवसाय आदि वृहद् स्तर पर पाए गए। भारत की 1901 की

जनगणना में 133 सामाजिक समूहों को पूर्णतया या आंशिक मुस्लिम के रूप में सूचीबद्ध किया गया। वर्तमान समय में भारत का मुस्लिम समाज चार बड़े समूहों में विभाजित है। (1) अशराफ़ जो अपनी उत्पति विदेशी धरती जैसे अरब, फारस, तुर्किस्तान या अफगानिस्तान से मानते हैं। (2) ऊँची जातियों के हिन्दू जो इस्लाम में परिवर्तित हो गए (3) मध्य स्तर की जातियों, जिसके व्यवसायिक संस्कार स्वच्छ थे, से इस्लाम में परिवर्तित (4) वे अछूत जातियाँ जिन्होंने इस्लाम कबूल किया जैसे भंगी (जमादार), मेहतर (सफाई कर्मी) चमार (चमड़ा बनाने वाले), डोम आदि"[3] मोटे तौर पर इन चारों समूहों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम अगड़ी जाति जिसमें विदेशी नस्ल के मुसलमान एवं भारतीय ऊँची जाति से परिवर्तित मुसलमान आते हैं एवं द्वितीय निम्न जाति जिसके अन्दर अजलाफ़ एवं अरजाल आता है। इसमें आने वाले को नीच या अपवित्र माना जाता है। इसमें सम्मिलित लोग अस्वच्छ व्यवसायी और निम्न श्रेणी के परिवर्तित समुदाय आते हैं।

दलित मुसलमानों की सामाजिक संरचना विस्तार से समझने के लिए उनके जातीय वर्गीकरण को समझना पड़ेगा भले ही इस्लाम इस वर्गीकरण को नहीं मानता हो परन्तु यह सच है जिसे छिपाया नहीं जा सकता है। हिन्दुओं की भांति ही मुसलमान में जातीय संरचना है। भारतीय मुसलमान मुख्यतः तीन जाति समूहों में बंटा हुआ है। अशराफ, अजलाफ़ और अरजाल। अशराफ में सैयद, शेख, पठान, मिर्जा, मुग़ल सम्मिलित हैं। यह मुस्लिमों का अभिजात वर्ग है। ये वर्ग अपना संबंध सीधे पैगम्बर के खानदान से जोड़ते हैं। इस वर्ग के अन्दर हिंदू धर्म की ऊँची जाति से परिवर्तित मुसलमान भी आते हैं। 'अजलाफ़' में अंसारी, मंसूरी, राइन, कुरैशी, दर्जी, बढ़ई, चरवाहा, पंवरिया, मदरिया जाति समूह आता है। इसमें हिन्दुओं की निची जाति से परिवर्तित मुसलमान आते हैं। 'अजलाफ' का अर्थ होता है 'नीच' तथा 'अरजाल' में हलालखोर, हवारी, रज्जाक आदि सम्मिलित हैं। 'अरजाल' का अर्थ होता है 'कमीना'। 1901 के भारत की जनगणना रिपोर्ट से पता चलता है कि इसमें बहुत निची जातियाँ सम्मिलित हैं। जैसे

हलालखोर, लालबेगी, अब्दुल और नेड़िया। इनके साथ कोई दूसरी जाति के लोग शादी-ब्याह का संबंध नहीं जोड़ता है। मस्जिदों में जाने की मनाही के साथ ये लोग सार्वजानिक दफनगाहों का भी उपयोग नहीं कर सकते हैं। वास्तव में मुस्लिम दलितों की स्थिति हिन्दू दलितों की तरह ही है। ये भी कीड़े-मकौड़े जैसे ही जीवन जीने को बाध्य है। हिन्दू दलितों को अनुसूचित जाति का आरक्षण प्राप्त है परन्तु इन्हें नहीं। ये बात अलग है कि "छुआछुत का विचार भारतीय मुस्लिम समाज में हिन्दू समाज की तुलना में काफी हद तक क्षीण है। संस्कार की दृष्टि से मुस्लिमों में ब्राह्मण जाति की तरह कोई जाति नहीं है, सैयदों को मुस्लिम समाज में भले ही उच्च स्थान प्राप्त हो पर वे भी ब्राह्मणों की तरह अनोखा पद नहीं प्राप्त कर सके हैं।"[4] परन्तु सजातीय विवाह, जन्म और वंश की गहरी भावना हिन्दू और मुसलमान दोनों में बड़े पैमाने पर पायी जाती है। अतः मुसलमानों में जाति व्यवस्था हिन्दू धर्म के जातिगत व्यवस्था के प्रभावों की देन है।

मुसलमानों की कुछ जातियों को पिछड़ा वर्ग में आरक्षण प्राप्त है परन्तु किसी को अनुसूचित जाति के अंतर्गत शामिल नहीं किया गया है। इसी वजह से पसमांदा समाज आन्दोलन रत है। उनका कहना है कि वे दलित हैं और प्रताड़ित भी। इस लिहाज़ से उन्हें भी आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए। मुस्लिम विशेषज्ञों का मानना है कि मुस्लिम समाज में कई ऐसी जातियां हैं जिसके साथ हिन्दुओं की दलितों की तरह ही व्यवहार किया जाता है। उनमें जो हलालखोर जाति है वह मल ढोने का काम करती है। उसे मुस्लिम समाज में अस्पृश्य माना जाता है। इसीलिए ऐसे दलितों को अनुसूचित जाति में शामिल कर उन्हें भी आरक्षण देने की मांग होती रही है। बिहार में इन्हीं दलितों को न्याय देने के लिए 'आल इंडिया पसमांदा मुस्लिम महाज' संगठन का गठन किया था जिसका नेतृत्व भुत पूर्व सांसद एवं पत्रकार अली अनवर अंसारी जी कर रहे हैं। उन्होंने इस समाज के ऊपर किताब भी लिखी है 'मसावत की जंग, 'दलित मुसलमान' इसके अलावा वे 'पसमांदा आवाज' पत्रिका के संपादक भी रहे हैं। वे दलित मुस्लिम समाज के लिए हमेशा आवाज उठाते रहे हैं।

'पसमांदा' एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ है 'जो पीछे रह गया है' यह शुद्र अथवा अति शुद्र यानी कि मुस्लिम दलित जातियों को कहा जाता है। वर्ष 1998 में इस समाज ने 'पसमांदा मुस्लिम महाज' समूह का निर्माण किया जो मुस्लिम अगड़ी जातियों के विरोध के रूप में अपनाया गया था। इस समूह ने मुस्लिम दलितों के उत्थान के लिए बिहार से लेकर उत्तर प्रदेश तक आन्दोलन की। मुस्लिम दलित समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े लोग शामिल हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में कई दशक के बाद भी मुस्लिम दलितों की हालत में कोई सुधार नहीं आई है। राजनीति में दलित मुस्लिमों का नेतृत्व करने वाला नहीं के बराबर है। उनकी विडंबना यह है कि उनकी बात करने वाला कोई नहीं है। दलितों की जो भी बात होती है वह हिन्दू दलितों तक ही सीमित रहती है। जिस तरह से हिन्दू दलितों का साहित्य में हस्तक्षेप दिखता है उस तरह मुस्लिम दलितों का नहीं दिखता है। दुःख का विषय यह है कि वह दलित साहित्य से बाहर है ही दलित चिंतकों की सोच के दायरे में भी अपनी जगह नहीं बना पाया है।

भारत में समय समय पर गठित कुछ आयोगों ने यथा काका कालेलकर आयोग, मंडल आयोग, सच्चर कमिटी, रंगनाथ मिश्र कमीशन आदि ने मुस्लिम समाज में जातिगत भेदभाव को स्वीकार किया और उसके कारण कई हद तक मुस्लिम समाज के पिछड़ी जातियों का उत्थान हुआ। उनको आरक्षण का लाभ हुआ जिससे सरकारी नौकरियों में उनकी हिस्सेदारी बढ़ी। इन आयोगों की मदद से पसमांदा मुस्लिमों की भी हालत में कमोबेस सुधार आई है भले ही वह सन्तोषजनक नहीं है। गौरतलब है कि इनकी हालत को सुधारने में मुस्लिम संस्थाओं की भूमिका नगण्य दिखाई पड़ती है। मुस्लिम नेता और समाज सेवी में दलितों के उत्थान विषयक दृष्टि का अभाव है। मुस्लिम पर्सनल बोर्ड, जमाते इस्लामी, आदि बड़े स्तर की संस्था में दलित, आदिवासी, पिछड़े मुस्लिम समाज की भागीदारी लगभग शून्य है। सत्ता के केंद्र में मुस्लिम अशराफ वर्ग के लोग ही आधिपत्य जमाये हुए हैं और ये लोग सामाजिक न्याय के विषय पर

अमूमन मौन ही रहते हैं। एक तो सत्ता में मुस्लिम नेतृत्व का अभाव है दूसरा जो नेतृत्व कर भी रहा है वह भी इन दलितों को न्याय दिलाने की कोई कोशिश नहीं करता है।

राही मासूम रज़ा जी ने अपने उपन्यासों में वर्ग विभाजन से लेकर स्त्री समस्या, आर्थिक, राजनीतिक आदि समस्याओं का उजागर किया है, इसके साथ ही जातिवाद की समस्या को भी उन्होंने उसी तल्ख़ सच्चाई के साथ उठाया है। जातीय भेदभाव की समस्या हिन्दू समाज की तरह मुस्लिम समाज में भी व्याप्त है। राही जी के उपन्यास 'आधा गाँव' में जातिगत भेदभाव को स्पष्ट रूप में दिखाया गया है। मुस्लिम समाज में सैयद वर्ग को ऊँची जाति का दर्जा प्राप्त है। इस उपन्यास में राही ने सैयदों के साथ राकी, जुलाहे, नाइन जैसी छोटी जातियों के संबंधों और उनके परस्पर जातिगत भेदभाव को पूरे यथार्थ के साथ उजागर किया है। एक प्रसंग है जहाँ अब्बास नामक सैयद अपने मित्र और सीनियर फारूक से मिलने के लिए उसके घर जाने की कोशिश करता है परन्तु वह उसके घर इसलिए नहीं जा सकता था क्यूँकी फारुक छोटी जाति (राकी) का है "मियाँ अब्बू तुम इतने बड़े हो गए और तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि अशराफ राकियों-वाकियों के दरवाजे पर नहीं जाते!"[5] जातिगत ऊँच-नीच के भेद के कारण ही गाँव का कोई भी सैयद किसी छोटी जाति के लोगों को अपनी समान जगह पर बैठने नहीं देता है। छोटी जातियों के लोगों को जमीन पर ही बैठना पड़ता है।

जातिगत भेदभाव का बीज बच्चों में उसके बचपन में ही बो दिया जाता है जिसके कारण वह उसी संस्कार के साथ बड़ा होता है तथा भेदभावपूर्ण वर्ताव करता रहता है। राही जी अपने उपन्यास में बताते हैं कि एक बार जब वह गाँव के जुलाहों के बच्चों के साथ कबड्डी खेलने गए तो उन्हें जातिवाद की घोर समस्या से गुजरना पड़ा। "उस दिन पहली और आखिरी बार जुलाहों के लड़कों के साथ कबड्डी खेला था...मैं गिर पड़ा लड़के मुझपर टूट पड़े। सफ़ेद मलमल का कुरता तार-तार हो चुका था...फिर एकदम से दो बड़े-बड़े खुरदरे हाथों ने लड़कों को इधर-उधर फेंक दिया-अब तुँह लोगन अइसन लाट साहेब होगइल बाड़ा की मीर साहेब के लइकन से

कबड्डी खेलबा?"[6] गाँव के इस तरह की जातिगत मनोग्रंथि का चित्रण कर राही जी मुस्लिम समाज की जाति आधारित संरचना की भयावह स्थिति को दर्शाया है जिसमें एक बच्चे किसी दूसरे बच्चे के साथ इसलिए नहीं खेल सकता क्यूंकि उसमें जातिगत अंतर है। इसी तरह की मानसिकता 'छाको की वापसी' उपन्यास में भी देखी जा सकती है। खाजे बाबू के पिता जो कि सैयद खानदान के हैं वे खाजे बाबू को जुलाहे के लड़के छाको के साथ खेलने से मना करते हैं। छाको को इस बात से बहुत दुःख होता है कि बार बार उसे नीच, कमीना कहा जाए इसीलिए वह फैसला करता है कि वह किसी अशराफ के साथ नहीं खेलेगा "हम नहीं खेलते तुमरे साथ। तुम असराफ हो तो अपने घर के। हम कमीना है तो अपने घर के। नहीं खेलते तुमरे साथ"[7] छाको भले ही छोटी जाति का है परन्तु उसके पास दिल बड़ी जातियों के लोगों से भी बड़ा है, क्योंकि बड़ी जातियों के लोग नस्ल, जात-पात आदि के आधार पर भेद भाव करते हैं। खाजे के पिता नस्ल भेद रंग भेद जाति भेद आदि को महत्ता प्रदान करते हैं। उनका मानना है कि "एक नस्ल और एक तबके के लोग आपस में ही उठते और बैठते हैं। शरीफ़ शरीफों के साथ मिलते हैं, कमीने कमीनों के साथ।"[8]

जातिगत भेदभाव के कारण ही 'आधा गाँव' के हाकिम साहब किसी छोटी जाति के व्यक्ति को हाथ से छूकर इलाज करने से परहेज करते हैं। उनको छूने मात्र से मानों वह अपवित्र हो जायेंगे। डॉ अथवा वैद्य का स्थान ईश्वर के समीप होता है और ईश्वर किसी के साथ भेदभाव नहीं करते सबको समान दृष्टि से देखते हैं। परन्तु समाज में जब हकीम मरीजों का इलाज भी जातिगत आधार पर करेगा तो समाज का विकास कैसे होगा। "उन्होंने (हाकिम साहब) एक कागज पर कुछ दवाएँ लिखकर वह कागज़ मरीज़ के मुंह पर फेंक दिया। मरीज़ दवाखाने की तरफ चला गया। हाकिम साहब हौज के किनारे बैठकर उस हाथ को साफ करने लगे जिस हाथ से उन्होंने एक काफ़िर और वह भी निची जात के एक काफ़िर का हाथ छुआ था"[9] छुआ छूत भारतीय समाज में कोढ़ की तरह है, इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों ग्रसित हैं। सदियों से ऊँची जाति

वाले लोग निची जाति के लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार करता आया है। यह बात अलग है कि मुस्लिम समाज में हिन्दुओं की तरह ब्राह्मणवाद का घोर वर्चस्व नहीं है। परन्तु इतना भेदभाव जरूर है कि जिससे छोटी जातियों के लोगों को प्रताड़ित किया जा सके।

राही जी ने दिखाया है कि मुस्लिम समाज में हड्डी की शुद्धता को लेकर कितना भ्रम फैला हुआ है। अर्थात ऊँची जाति के लोगों का वैवाहिक संबंध छोटी जाति के लोगों के साथ नहीं हो सकता है। मनुष्य-मनुष्य में भेद जन्म के आधार पर नहीं करना चाहिए। व्यक्ति को धर्म के ऊपर मानवता को स्थान देना चाहिए। मानवता आपको सद्भावना प्रदान करती है जबकि धर्म और जाति आपको आपस में वैमनस्य कराता है। आंबेडकर ने कहा था कि जातिगत भेदभाव को मिटाने के लिए अंतर्जातीय विवाह करना चाहिए। वास्तव में जबतक आप शादी विवाह को अपनी जाति तक सीमित रखेंगे तब तक समाज में जातिगत भेदभाव बना ही रहेगा। 'आधा गाँव' में राही दिखाते हैं कि कोई सैयद किसी जुलाहिन अथवा निची जाति से निकाह नहीं करना चाहता है। यदि कोई सोचता भी है तो उसे उसकी जाति याद दिलाकर उसका विरोध किया जाता है। "यह बात कुछ अच्छी नहीं मालूम होती कि कोई सय्यदजादा किसी हारामी लड़की से शादी करे और हरामी भी कैसी कि जिसकी माँ चमाइन हो"[10]

शिक्षा हमें यही संस्कार देती है कि 'जाति-पाती का भेद न होगा ऐसा पथ अपनाएंगे' वास्तव में शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान करती है। परन्तु किसी समाज में जब कोई परम्परा रूढ़ जाती है तो उसको तोड़ने में बहुत समय लगता है। ऐसे में शिक्षित व्यक्ति भी कहीं न कहीं उसका शिकार हो जाता है। स्वार्थ ऐसी चीज है जो व्यक्ति को मूल्यों से भटकाने की कोशिश करता है और वह कुछ हद तक सफल भी हो जाता है। 'छाको की वापसी' उपन्यास में खाजे बाबु के पिता शिक्षित हैं परन्तु वह पुरानी मान्यताओं के शिकार हैं। उनके अन्दर जातिगत भेदभाव उसी तरह व्याप्त है जिस तरह किसी अनपढ़ के अन्दर हो सकता है। जातिगत व्यवस्था समाज में इतना सशक्त है कि छोटी जाति के लोग भी उसे सहर्ष यह सोचकर स्वीकारता है कि

वास्तव में वे छोटी जाति ही है परन्तु वास्तविकता यह है कि ऐसी कोई बात नहीं है। दरअसल यह वर्चस्व कायम करने की साज़िश का परिणाम है जिसके चपेट में आकर दलितों ने अपना ह्रास किया। वर्चस्वादियों ने बड़ी चालाकी से बहुसंख्यक जातियों पर राज किया। उन्हें अपने उपयोग अनुसार व्यवहार में लाया और अपने को शीर्ष पर रखा। बदीउज़्ज़माँ जी ने अपने उपन्यास में इस जातिगत मनोवृति का यथार्थ अंकन किया है। "हमारा खानदान सैयदों का था, मोहल्ले में दो चार घर ही तो सयदों के थे। बाकी लोग तो जुलाहे, कसाई या दरजी थे। इनकी गिनती शरीफों में कहाँ होती थी? ये कमीने और निची जात के लोग माने जाते थे। और ये लोग खुद भी अपना दर्जा हम लोगों से बहुत कम मानते थे। मोहल्ले में ये निची जात वाले तमाम लोग हम लोगों की बहुत इज्ज़त किया करते थे। अब्बा को खुद भी अपने खानदान के बड़प्पन का बहुत एहसास था वह इसे बहुत फख्र की बात मानते थे कि वह सैयदों के खानदान में पैदा हुए"[11] बदीउज़्ज़माँ जी अपने उपन्यास में छोटी जाति की उस मानसिकता का उजागर करते नज़र आते हैं जिसमें व्यक्ति स्वयं को दूसरे से कमतर समझता है। दरअसल हजारों वर्षों से जिस मस्तिष्क पर जातिगत परत चढ़ा दिया गया हो उसे उतरने में समय तो लगेगा ही।

गाँव के जुलाहे सैयदों को ईश्वर का स्थान देते हैं और सैयद भी उसे नौकर के रूप में ही उसका इस्तेमाल करते हैं। विडंबना यह है कि छोटी जात के लोग सैयदों की सेवा करना अपना धर्म, अपना कर्तव्य समझता है। उन्हें लगता है कि इनकी सेवा करने से उन्हें जन्नत मिलेगी। "सैयद के पाँव दबावे से हो सकहइ कि अल्लाह मियाँ खुश हो जथिन। हमरा भी जन्नत देथिन अल्लाह मियाँ"[12] जबतक इनके मस्तिष्क से दासत्व का भाव ख़तम नहीं होगा तब तक जातिवाद का वर्चस्व कायम रहेगा।

'छाको की वापसी' उपन्यास में जातिवाद का भयानक रूप प्रस्तुत किया गया है। गाँव के दो चार घर सैयद पूरे गाँव के दलितों पर अपना वर्चस्व कायम किये हुए हैं। ये लोग उनके साथ दूर का ही संबंध रखना चाहते हैं। इनके साथ उठने-बैठने से परहेज तो करते ही हैं साथ ही इन्हें किसी

जलसे या किसी दावत में भी बुलाकर साथ नहीं खाने देते। इनके साथ अछूत जैसा व्यवहार करते हैं। उपन्यास में एक प्रसंग है जिसमें खाजे के छोटे भाई का खतना होता है जिसके बाद एक शानदार दावत रखी जाती है। हालाँकि इस दावत में छोटी जातियों के लोगों को भी बुलाया जाता है परन्तु उन्हें अपने साथ बैठकर खाने की अनुमति नहीं देते हैं। उनका खाना उनके घर भेजवा देते हैं। इसके पीछे का तर्क यह होता है कि शरीफों के साथ बैठकर नीच और कमीने लोग कैसे खा सकते हैं। प्रसंग इस प्रकार है "जब छोटे भाई का खतना हुआ था तो अब्बा ने बड़ी शानदार दावत का इंतजाम किया था। शहर के सारे आदमियों को खाना खिलाया गया था। कई तोड़ में लोगों ने खाना खाया था। महम्दू खलीफ़ा जैसे लोगों को भी खाने का न्योता दिया गया था, लेकिन इनका खाना इनके घरों पर ही भेज दिया गया था। इन्हें शरीफ़ मेहमानों के साथ बैठकर कैसे खाना खिलाया जा सकता था।"[13] आशचर्य की बात यह है कि इस बात से गाँव में किसी को कोई तकलीफ नहीं होती है कि उनका अपमान किया जा रहा है। वे इसे अपना अपमान न समझकर उसे साधरणतः ही लेते हैं। इन छोटी जातियों के लोगों को यह भी मालूम है कि वे उनकी बराबरी नहीं कर सकते। अतः इसीलिए न तो इनका वैवाहिक संबंध उनके साथ होता है और न ही वे एक-दूसरे के वैवाहिक कार्यक्रम में सम्मिलित होते हैं। छाको की जब बारात निकलती है तो उसमें उसका दोस्त खाजे बाबु नहीं जाता है क्योंकि एक दोस्त होने से पहले वह एक सैयद है जिसे इस बात की इजाजत नहीं कि वह किसी कमीने की बारात जाये। "बारात जा चुकी है पर हमारे यहाँ से कोई भी नहीं गया है। दुनिया में हर बात के लिए कायदे बने हुए है। छाको की बारात में हमारे घर का कोई आदमी नहीं जा सकता। यह बात सबको उसी तरह मालूम है जिस तरह यह बात कि सूरज पूरब में निकलता है"[14] उक्त कथनों से यह स्पष्ट होता है कि मुस्लिम समाज में भी जातिगत मानदंड है जिसके अनुरूप ही सबको चलना पड़ता है, इसके इतर कोई नहीं चल सकता है। खाजे इसके इतर चलने की कई कोशिश करता है परन्तु उसे सामाजिक नीति-नियम को मानकर चलने पर विवश कर दिया जाता है। स्वयं उसके पिता इस सामाजिक

जातिगत भेद-भाव के समर्थक हैं और स्वयं को ऊँची जाति का मानकर गर्व का अनुभव करते फिरते हैं।

संदर्भ सूची:

1. इम्तियाज़ अहमद, भारत के मुसलमान में जातिव्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण, पृष्ठ-19
2. (सं) राजकिशोर, भारतीय मुसलमान: मिथक और यथार्थ, पृष्ठ-43
3. सच्चर कमिटी रिपोर्ट भारत सरकार (2006), भारत में मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति, पृष्ठ-180
4. सुनील यादव, भारतीय मुसलमान मिथक, इतिहास और यथार्थ, पृष्ठ-29
5. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-62
6. वही, पृष्ठ-34
7. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-47
8. वही, पृष्ठ-61
9. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-96
10. वही, पृष्ठ-108
11. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-40
12. वही, पृष्ठ-43
13. वही, पृष्ठ-62
14. वही, पृष्ठ-68

5.2 वर्गीय दृष्टिकोण

वर्ग ऐसे लोगों के समूह को कहा जाता है जो अपनी जीविका एक ही ढंग से कमाता है। एक किसान की जीविका खेती होती है और एक सामंत की किसी तरह वसूले गए कर। सामंत वर्ग का वर्ग हित यह होता है कि वह ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करे और मुनाफा कमायें। किसान वर्ग की चाहत होती है कि वह उत्पादन का अधिक-से अधिक भाग अपने हित के लिए बचा ले। इस प्रकार दोनों वर्गों के मध्य वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया चलती रहती है।

भारत में मुख्यतः वर्ग आर्थिक आधार पर तीन भागों में विभक्त है। निम्न वर्ग, मध्य वर्ग तथा उच्च वर्ग। निम्न वर्ग का जीवन अभावग्रस्त ही रहता है जिसे जीवन के अनेक कष्टों को सहना पड़ता है। रोजी-रोटी के लिए नितांत कठोरतम संघर्ष करना पड़ता है। दिन भर मेहनत-मजदूरी करने के बावजूद भी भर पेट खाना मिल सके इसकी कोई गारंटी नहीं होती है। मध्य वर्ग को अमूमन दो भागों में देखे जाते हैं- निम्न मध्य वर्ग और उच्च मध्य वर्ग। निम्न मध्य वर्ग के लोगों का जीवन-संघर्ष अत्यंत दयनीय होता है। छोटी छोटी ज़रूरतों व मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अथक प्रयास करने पड़ते हैं। उच्च-मध्य वर्ग के लोगों को भी संघर्ष करना पड़ता है परन्तु उनकी मूलभूत आवश्यकताएं आसानी से पूरी हो जाती है। छोटी-छोटी चीजों की पूर्ति के लिए उन्हें अधिक परेशान होने की आवश्यकता नहीं होती है। उच्च वर्ग के लोग आर्थिक दृष्टि से संपन्न होते हैं। इस वर्ग के लोगों का जीवन अभावग्रस्त नहीं होता है। सुख सुविधाओं का उपभोग करते हैं। ऐसे वर्गों की संख्या समाज में बहुत कम होती हैं। निम्न वर्ग और मध्य वर्ग की संख्या समाज में अधिक होती है।

भारतीय समाज की वर्गीय संरचना को समझना एक महत्वपूर्ण एवं जटिल कार्य है। इसे समझने के लिए जाति और वर्ग में अंतर को भी समझना आवश्यक है। जाति का संबन्ध जन्मगत होता है, वहीं वर्ग का सम्बन्ध अर्थ से है जिसे अर्जित किया जाता है। जाति बदली नहीं जा

सकती है। जिस जाति, कुल में जिसका जन्म होता है वह उसी जाति अथवा वंश का हो जाता है परन्तु वर्ग कर्म पर आधारित होता है। वर्ग की सदस्यता कमाई जा सकती है। इसमें कोई भी अपनी वर्गीय स्थिति कर्म अनुसार बदल सकता है। एक ही जाति में कई अलग-अलग वर्ग हो सकता है ठीक उसी तरह एक वर्ग के अन्दर अलग-अलग जातियाँ हो सकती हैं। भारतीय सामाजिक संदर्भ में वर्ग और जाति एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी कुछ मामलों में एक-दूसरे के काफी क़रीब हैं। भारत की सामाजिक संरचना को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के जो उच्च एवं मध्य वर्ग है उसमें निम्न जाति के लोग बहुत कम है अथवा नहीं के बराबर हैं। उदाहरण स्वरूप भारत में जिसे निम्न जाति कहा जाता है- जैसे डोम, चमार, दुसाध, नाई, तेली, भर, माली, मल्लाह, जुलहा आदि वर्गीय दृष्टिकोण से भी निम्न वर्ग में ही आता है। इनका न वर्ण उच्च है न वर्ग। ध्यातव्य है कि जो निम्न जाति में जन्म लेता है उसकी वर्गीय स्थिति अधिकांश निम्न वर्ग की ही होती है। इस तरह हम देखते हैं कि वर्ग और वर्ण दोनों एक-दूसरे को कई मायनों में प्रभावित करता है। "वर्ग की पारम्परिक संरचना आर्थिक आधार पर है। एक वर्ग जिसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है और दूसरा जिसके पास ऐसा कोई अधिकार नहीं होता और वह पहले वर्ग के यहाँ मजदूरी या वेतन के बदले अपना श्रम बेचता है। यानी एक शोषक वर्ग और एक वंचित वर्ग। लेकिन वंचना का इकलौता आधार हमेशा आर्थिक ही नहीं होता कई बार सामाजिक संरचनाएं भी वंचना और भेद-भाव के लिए जिम्मेदार होती है। जैसे भारत में जातिवाद संरचना अफ्रीका के संबंध में रंगभेद"[1] ध्यातव्य है कि निम्न वर्ण और निम्न वर्ग के लोग वंचना का शिकार होते हैं। इस वर्ग के लोग अपनी संतान को मध्यवर्ग अथवा उच्च वर्ग की तरह शिक्षा नहीं दे पाते हैं जिसके कारण भी इनकी स्थिति निम्न वर्ग की ही अधिकांश रह जाती है। जो परिवार अपनी संतान को शिक्षा दे पता है उसकी वर्गीय स्थिति बदलती है। अतः वर्गीय स्थिति बदलने में शिक्षा मदद करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शोषक वर्गों से मुक्ति का रास्ता संघर्ष है जिसके लिए एकत्रित रहना और शिक्षा ग्रहण करना अनिवार्य है।

इस क्रम में मुस्लिम समाज की वर्गीय संरचना को समझना भी आवश्यक है। भारतीय मुस्लिम समाज के वर्गीय आधार को समझने के लिए हमें भारत में मुस्लिम समाज के इतिहास में भी झांकना पड़ेगा। मध्यकाल के मुस्लिम समाज के "सामाजिक वर्गों का संगठन प्रायः सादा था। यह ध्यान में रखते हुए कि सुलतान जनता का नेता और संकटग्रस्त तथा उथल-पुथल जगत की शांति प्रमुख गारंटी है, वह समाज के सर्वोच्च स्थान पर रहता था, अमीर और अन्य विशेषाधिकार युक्त वर्ग एक प्रकार से उसके अधीनस्थ ही रहते थे, जन-साधारण (जिसमें विभिन्न वर्ग के हिन्दू और निम्नवर्ग के मुस्लिम सम्मिलित थे) उनसे नीचे थे और साधारण परिस्थितियों में दोनों वर्गों के मध्य अनुलंघ्य खाई थी।"[2] हुमायूँ ने जिस वर्ग विभाजन का जिक्र किया था उसमें शासक वर्ग, उलेमा वर्ग और मध्यवर्ग सम्मिलित था। इसके अलावा अन्य विद्वानों ने भी मुस्लिम समाज का वर्गीकरण किया है। कुछ विद्वान् इस समाज को शासक वर्ग, अभिजात वर्ग तथा जनसाधारण वर्ग में विभाजन किया है। कुछ विद्वान उमरा वर्ग, उलेमा वर्ग तथा जनसाधारण वर्ग में। के. एम अशराफ़ मुस्लिम समाज का विभाजन करते हुए कहते हैं कि "हुमायूँ द्वारा किये गये उन वर्गों के अधिकतम विस्तृत वर्गीकरण का अनुसरण करें तो हमें दो दर्जन छोटे-छोटे वर्ग मिलते हैं, जो लगभग वर्तमान मुस्लिम समाज के उच्च वर्ग के सामाजिक विभाजन के अनुरूप ही हैं। उनके स्तर क्रम इस प्रकार है: सुलतान, राजपरिवार, खान और अमीर पद के अन्य लोग, सैयद, उलेमा कुलीन वर्ग, पदाधिकारी, राज्य के बड़े अधिकारी, विभिन्न कबीलों के नेता, शाही लौंडों का दल, शाही बटुआ रखने वाला, शाही रक्षक दल के सदस्य, सुलतान के महल के निजी भृत्य और उसके सेवक और घर के नौकर।"[3] इस सामाजिक संरचना के बाहर का दूसरा वर्ग उलेमा का था जिसमें दरवेश, मशायख, सूफी, संत आते हैं। इस समाज का जो तीसरा वर्ग था वह था मध्य वर्ग, जिसमें पढ़े लिखे लोग आते हैं, जिसमें शिक्षक, वैद्य, कवि, दूकानदार महाजन, वेतन भोगी राजकीय कर्मचारी आते थे। इस समाज का चौथा वर्ग किसानों तथा छोटे व्यवसायी एवं शिल्पकारों का था। जिसमें हाथ से काम करने वाले जैसे लुहार, बढ़ई, जुलाहे, कहार भी आते थे।

भारत में अंग्रेजों के आगमन ने मुस्लिम समाज में नए वर्गों को जन्म दिया। अंग्रेजों के आने के पश्चात् नए सामाजिक अर्थतंत्र, नई राज्य व्यवस्था नए प्रजातंत्र और नई शिक्षा प्रणाली को लागु किया गया जिसके कारण नए वर्ग का उदय हुआ। ए. आर. देसाई का कहना है कि "मूलतः ब्रिटिश सरकार के अधिनियमों द्वारा लाए गए आधारभूत आर्थिक परिवर्तन, भारतीय समाज में बाहर की पूंजीवादी दुनिया वाणिज्य और अन्य प्रकार के तत्वों के प्रवेश और भारत में नए उद्योग की स्थापना के कारण ही ये नए वर्ग उदित हुए।"[4] अंग्रेजों के आगमन से कई बदलाव हुए। जमींदारी और रैयतवारी प्रथा के माध्यम से जमीन पर स्वाधिकार को लागु किया जिसके कारण जमींदारों और खेतिहरों के वर्ग का जन्म हुआ। उसके बाद जमीन को पट्टे पर देने की शुरूआत ने बटाईदारों और पट्टोंदारों के वर्ग को जन्म दिया। इससे जमीन की खरीद-बिक्री और जमीन पर मजदूर लगाने का अधिकार प्राप्त हुआ जिसके बाद जमींदारों और कृषक सर्वहारा वर्ग के उदय की स्थिति बनी।

आजादी के बाद भूमि सुधार का प्रयत्न हुआ जिसके परिणाम स्वरूप सन् 1950 में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ। सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश में जमीनदारी प्रथा को समाप्त किया गया। जमींदारों की जमीन पर काम कर रहे भूमिहीन किसानों को भूमि मिल गयी जिसके कारण जमींदारों की आर्थिक स्थिति ख़राब हो गयी। राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में इसी वर्ग का चित्रण किया है। भले ही आजादी के बाद इस वर्ग की स्थिति ख़राब हुई हो लेकिन आजादी के पहले मुस्लिम जमींदारों ने जमींदारी का खूब लाभ उठाया था। ये वर्ग सर्वहारा वर्ग पर जुल्म करता था। राही ने दिखाया है कि जो निम्न वर्ग के मजदूर थे उनकी स्थिति बदहाल थी। जमींदार वर्ग इन मजदुरों का शोषण करते थे और उन्हें कीड़े-मकौड़े समझते थे। ज़मींदार अशरफुल्लाह खां अपने मजदूर को गाली देते हुए जमींदारी का रोब दिखाता है "साले, अगर परसों तक लगान और क़र्ज़ मय सूद के न आ गया तो ढोर-डंगर सब नीलाम करवा दूँगा और अपने इन लाट साहब को भी ले जा और इन्हें बतला कि जमींदारों से कैसे बातचीत की जाती

है।"[5] ध्यातव्य है कि आजादी के पहले श्रमिकों की दयनीय स्थिति थी। ज़मींदारों के खेत में काम करते किसानों को अपने मालिकों के चरणों में पड़ा रहना पड़ता था। राही उस वर्ग की पीड़ा को समझते थे इसीलिए अपने उपन्यास में सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदनशील दिखते हैं। शोषक वर्ग हमेशा से सर्वहारा वर्ग को प्रताड़ित करता आया है। 'आधा गाँव' की मुस्लिम सामाजिक संरचना में सैयद जमींदारों का एक वर्ग है जो वर्ग और वर्ण दोनों लिहाज से बाकी के लोगों से ऊँचा है। दूसरी ओर चमार, जुलाहा आदि निम्न वर्ग है जो जमींदारों के खेत में काम करके जीवन यापन करता है। इन मजदुरों में कुछ लोग सैयदों के नौकर हैं कुछ अन्य श्रम का काम करते हैं। राही इन सर्वहारा वर्ग में वर्ग चेतना जागृत करते हुए नज़र आते हैं। उन्होंने आजादी के बाद के जमींदारों की वर्गीय चेतना का यथार्थ अंकन किया है। जमींदारों को यह तो मालूम हो गया था कि जमींदारी जाने के बाद उनका रुतवा भी चला जाएगा और उनके आश्रय में रहने वाले श्रमिक निम्न वर्ग भी उनकी बराबरी करने लगेगा। राही ने ज़मींदारों की इस मनोदशा को सही पकड़ा है। "ऊ ससुर अब का करिहें? बाकी, हम कह रहें कि का ज़माना आ गवा है! सुखरमवा का बेटा परसुरमवा जेल से आते ही नेता हो गया है। गांधी-टोपी पहिने मार तकरीर करता घूम रहा कि जमाना बदल गया है। अब जमींदारन का जोर-जुलुम ना चलिहे!"[6] राही जमींदारों के प्रति संवेदनशील नज़र ज़रूर आते हैं साथ ही वे बदलते समय के मूल्यों को भी नज़रअंदाज नहीं करते हैं। 'आधा गाँव' का पात्र मिग्दाद भले ही जमींदार का लड़का है लेकिन वह एक किसान है और जमींदारों के जुल्म के खिलाफ तकरीर करता है। "बाप-ओप हम ना जन्ते।... ऊ जमींदार है और हम काश्तकार।"[7] ध्यातव्य है कि राही जमींदारों के जोर-जुल्म के खिलाफ एक ऐसे वर्ग की रचना करते हैं जो जमींदारों से त्रस्त होकर उसके खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करता है। यह वर्ग राही के काल्पनिक संसार का वर्ग नहीं है अपितु भारतीय समाज का यथार्थ निम्न वर्ग है जो आजादी के बाद और मुखर हो चुका था। मार्क्स ने इसी क्रांति की बात की है कि सर्वहारा वर्ग को अपने अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ेगा तभी जाकर शोषक वर्ग और सर्वहारा वर्ग में समानता बनी

रहेगी। वर्तमान समय में मिल मालिक भी मजदुरों के साथ अन्याय करता है। ऐसे समय में हड़ताल और उनके खिलाफ क्रांति ही विकल्प बचता है। राही इन मिल मालिकों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं उनके मजदूर पात्र कहते हैं "खून-पानी एक करें हम मजूर लोग, अउर मौज उड़ाए मिल मालिक!"[8]

शानी के 'काला जल' में आदिवासी निम्न वर्गों का विद्रोह नज़र आता है। ये शहर के मध्य वर्ग विशेषकर नौकरीपेशा थे जो आदिवासियों के ऊपर जुल्म कर रहे थे। इनमें पुलिस, फोरेस्ट रेंजर, पटवारी जैसे वर्ग शामिल थे। सन् 1910 में भारत में आदिवासियों का विद्रोह इन्हीं वर्गों के खिलाफ हुआ था जिसका शानी ने यथार्थ चित्रण किया है। इस विद्रोह में शासक वर्ग को उसकी गलतियों की सजा देते हुए दिखाया गया है। जाहिर है जब शासक वर्ग का अत्याचार बढ़ता है तब सर्वहारा वर्ग को क्रांति का रास्ता अपनाना पड़ता है। "किसी जंगल या पहाड़ी के बीच गाँव में आदिवासियों की एक विशाल सभा जुटी है। गिरफ़्तार सरकारी अधिकारी क़तार से पेड़ों में बंधे हुए, बारी बारी से अपने दुर्भाग्य की राह देख रहे हैं। जिसकी बारी आती है, पहले उसकी अपराध सबके सामने सुनाया जाता है।"[9] इन मध्यवर्गीय अपराधियों को पकड़ कर उसकी अपराधों के अनुसार सजा दी जाती है। जी पटवारी को उसकी ऊँगली कुचलवा दी जाती है तो वहीं पुलिस के सिने पर तीर की नोक भोंक दी जाती है।

आजादी मिलने के बाद मुस्लिम समाज सिर्फ मुसलमान होने के कारण पाकिस्तान नहीं गए थे अपितु बेहतर अवसर की तलाश में गए थे। 'छाको की वापसी' उपन्यास में बदीउज़्ज़माँ इन पलायन करने वाले मुसलमानों की मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है। "हाजी करीम तो एक महत्वकांक्षी व्यक्ति है। उसे दौलत और जायदाद की हवस है। वह अगर अपनी हवस पूरी करने के लिए पाकिस्तान चला गया तो यह बात समझ में आ सकती थी। इसी तरह मुहल्ले के कई नौकरी-पेशा लोग भी चले गए थे। खुद छोटे अब्बा और हबीब भाई ही तरक्की और ज्यादा ऊँची नौकरियों की हवस में पाकिस्तान चले गये थे।"[10] इन वर्गों का मानना था कि पाकिस्तान

वैसे लोग ही जाये जो पाकिस्तान की तरक्की में योगदान दे सकें। ये वर्ग निम्न वर्ग को हेय दृष्टि से देखता है। छाको निम्न वर्ग का जुलाहा है जो अपना श्रम बेच कर जीवन यापन करता है। जाहिर है ऐसे लोग पाकिस्तान की तरक्की में कोई योगदान नहीं दे सकेंगे इसीलिए हबीब जैसे मध्यवर्गीय व्यक्ति इन लोगों के खिलाफ है। "उनका ख्याल था कि जाहिल और गँवार मुसलमान पाकिस्तान न ही जाएँ तो अच्छा है। पढ़े-लिखे मुसलमानों को ही वहाँ जाना चहिये। ये लोग पाकिस्तान के लिए मुफ़ीद होंगे और इनकी भी पाकिस्तान से फ़ायदा पहुँचेगा। छाको जैसे लोग वहाँ पहुँचने लगे तो मुसलमानों का यह नया मुल्क क्या ख़ाक तरक्की करेगा!"[11] ध्यातव्य है कि मध्य वर्ग के मुसलमान निजी स्वार्थ से घिरे हुए हैं। उनकी संवेदना निम्न वर्गों के साथ नहीं है। बदीउज़्ज़माँ ऐसे वर्गों के खिलाफ गाँधी भाई जैसे पात्रों को खड़ा करते हैं जो निम्न वर्ग का है। उसके अन्दर कोई भेदभाव की भावना या धन की हवस नहीं है। वह देश की भलाई चाहता है। वह अवसरवादी नहीं है इसीलिए वह हबीब की तरह पलायन नहीं करता है।

वास्तव में विभाजन के बाद हिंदुस्तान में अधिकांशतः निम्न वर्ग के मुसलमान ही बच गए थे। जिसमें मजदूरी करने वाला, ठेला चलाने वाला, रिक्शा चलाने वाला, कारीगर, जुलाहा आदि शामिल थे। छाको का परिवार भी निम्न वर्ग का था। 'काला जल' में भी ऐसे पात्र हिंदुस्तान में रह जाते हैं जो निम्न वर्ग के हैं और उनकी हैसियत भी मामूली है। बकौल शानी "तीन-चार घरों को छोड़कर बाकी सारी आबादी निम्न वर्ग के रिक्शे वाले, बढ़ई, कारीगर आदि क़िस्म के लोगों की थी जो स्वयं तो दिन भर गायाब रहते, लेकिन अपने नंगे-गंदे बच्चों को सड़कों पर लापरवाही से धूल में खेलने के लिए छोड़ जाते। रात को उन घरों से शराब के नशे में या तो पुरुषों के ऊँचे कहकहे उठते या मोटी-भद्दी गालियाँ अथवा पिटती हुई औरतों के विलाप का ऊँचा स्वर गूंजता, 'भड़वे ने मार डाला रे, कोई बचाओ!"[12] शानी ने यहाँ भारत के निम्न वर्ग की सच्ची तस्वीर पेश की है। निम्न वर्ग के लोग अपना जीवन कमाने-खाने में, जीवन की छोटी-छोटी ज़रूरतों को पूरा करने में खपा देते हैं। ये वर्ग अशिक्षित होने के कारण घरेलू हिंसा करते हैं एवं अव्यवस्थिति ढंग

से जीवन यापन करते हैं। शानी के उपन्यास में जिस मध्यवर्ग का चित्रण हुआ है दरअसल वह निम्न मध्य वर्ग है। उनके जीवन में उथल-पुथल मचा रहता है। ये वर्ग न ही निम्न वर्ग की तरह जी पाते हैं, न ही मध्यवर्ग की जीवन-शैली का भार वहन कर पाते हैं! बब्बन का परिवार निम्न मध्यवर्गीय है लेकिन उसके पिता की ऐयासी की वजह से उसका घर बिक जाता है और वे लोग दूसरे के घर में भारा देकर रहने को मजबूर हो जाते हैं। इस वर्ग की विडंबना यही है कि इसे बहुत सावधानी के साथ जीवन जीना पड़ता है। 'आधा गाँव' के मध्य वर्ग के सैयद आजादी के पहले ठाठ-बाट के साथ जीवन जीते हैं लेकिन जमींदारी जाने के बाद इनकी भी हालत खस्ता हो जाती है। ऐसे में इन्हें या तो पाकिस्तान का रास्ता अख्तियार करना पड़ता है अथवा घुट-घुट कर झूठी शान के साथ जीने को अभिशप्त होना पड़ता है। राही ने दिखाया है कि ये वर्ग अपने पुराने दिनों की याद में खोये रहते हैं।

इब्राहीम शरीफ़ 'सामानांतर कहानी' के प्रतिष्ठापक हैं। उनका एक मात्र उपन्यास 'अँधेरे के साथ' प्रकाशित है जिसे विख्यात समीक्षक मधुरेश 'परिस्थितियों का अजगर और डरावनी छटपटाहट' के रूप में देखते हैं। इनके न सिर्फ उपन्यास में बल्कि कहानियों में भी मध्य वर्ग और आम आदमी के मध्य की संघर्ष को दिखाया गया है। इनका निम्न वर्ग संपन्न शक्तियों द्वारा सताया गया है जो उन शक्तियों के खिलाफ तन कर खड़ा होना चाहता है। वह उन तमाम अट्टालिकाओं को ध्वस्त कर देना चाहता है जिसमें बैठकर ये शक्तियाँ आम आदमियों का शोषण करता है। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं होता है। वे आम आदमी अंततः इन शक्तियों द्वारा कुचल दिए जाते हैं। शरीफ़ के उपन्यास और कहानियों का यथार्थ यही है कि कठोर संघर्ष के बावजूद आम आदमी को पराजित होना ही पड़ता है। कल्पना के सहारे भले ही वह उन सभी शोषकों की हत्या कर देता है परन्तु हक़ीकत यही होता है कि ये तमाम शोषक संघर्षरत कथानायक के संघर्ष को तिरोहित कर देता है।

शरीफ़ जी ने अपने उपन्यास में ऐसे वर्ग की मनोदशा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है जो लाचार है, रोजगार के लिए दर-दर की ठोकरे खा रहा है। उनकी कारुणिक पीड़ा और लाचार व्यवस्था की उपेक्षा की मार झेल रहे आम लोगों को कथा का पात्र बनाया है। 'अँधेरे के साथ' में भ्रष्ट व्यवस्था का सजीव चित्रण हुआ है। कथानायक मामूली सी नौकरी के लिए भी कितनी ठोकरे खाता है। जहाँ नौकरी करता है वहाँ की व्यवस्था भ्रष्ट है। अधिकारी सबके मासिक वेतन से घुस लेता है। कथानायक के विरोध के बाद उसे स्वयं नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। पैसों के अभाव में कथानायक के गरीब पिता की उचित इलाज के अभाव में मौत हो जाती है। गाँव के अजगर रूपी डॉ. पैसों का लालची है। गरीबों का शोषण करके अपना घर भर रहा है। लेकिन गरीबों की इलाज कम पैसों में नहीं कर सकता है। शरीफ़ ने ऐसे वर्ग के लिए आक्रोश व्यक्त किया है- "संसार में यही होता है। चुपचाप बैठे रहो तो सब भीतर उतर आते हैं। पलट कर तन कर खड़े हो जाओ तो हर किसी की गुर्राहट दब जाती है।"[13] गौरतलब है कि कथानायक जिस जगह नौकरी करता है वहाँ के अधिकारी सबका शोषण करते हैं। सब लोग चुपचाप रहते हैं इसीलिए उन सभी का शोषण होता रहता है। परन्तु कथानायक इस शोषण से मुक्त होना चाहता है। गाँव में भी चेयरमेन की शोषण से गाँव पीड़ित है परन्तु किसी में आवाज उठाने की हिम्मत नहीं है। कथानायक उसका विरोध करता है और एक तरह से कुछ उत्साही मित्रों के साथ एक जुट होकर संघर्ष करता है। शरीफ़ दिखाते हैं कि वर्ग संघर्ष के माध्यम से ही इन शोषकों की जड़ें हिलायी जा सकती हैं। चेयरमेन जैसे शोषक वर्ग के खिलाफ खड़ा होना ही वर्ग चेतना है। शरीफ़ अपने पात्रों में वर्ग चेतना जागृत करते नज़र आते हैं।

'आँखों की दहलीज' मध्यवर्गीय जीवन के उहा-पोह को रेखांकित करता उपन्यास है। कथानायिका तालिया मध्यवर्गीय परिवार की बेटी है जिसकी शादी निम्न मध्यवर्गीय शमीम नामक युवक से होता है। वैसे तो मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यासों में वर्गसंघर्ष देखने को मिलता है। परन्तु इस उपन्यास में उन्होंने मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग के जीवन की विडंबना को हमारे सामने

रखने की कोशिश की है। तालिया, डॉ. शशि, जावेद ये सभी मध्यवर्गीय पात्र हैं। जमीला, बंशी ये निम्न वर्गीय पात्र हैं। परन्तु इनके मध्य कोई संघर्ष नहीं दिखता है। जमीला और बंशी निम्न वर्ग के होने के कारण तमाम तरह की कमियों से गुजरता है। बंशी तालिया के यहाँ नौकर है और जमीला भी कहीं काम करती है जिससे इनलोगों का घर चलता है।

लेखिका ने इस उपन्यास में दिखाया है कि दूसरों के घरों में काम कर रहे निम्न वर्ग के लोगों की हालत कितनी दयनीय होती है। नौकर का जीवन मालिकों के रहमो करम पर आश्रित होता है। बंशी दृष्टि से कमजोर नौकर होने के कारण आए दिन उसे अपने मालिक से कुछ न कुछ अप्रिय बातें सुननी पड़ती हैं। दृष्टि कमजोर होने के कारण ही एक दिन उसके हाथ से आचार की बोतल गिर कर टूट जाती है जिसके बाद उसकी मालकिन उसे बहुत डाट पिलाती है। जिसे वह अपना नसीब समझकर पी जाता है। गरीब आदमी को खरी-खोटी सुनने की आदत डालनी ही पड़ती है वरना उसका गुजारा नहीं चल सकता है। बंशी निम्न वर्ग के नौकर होने के कारण अपने परिवार का भरण-पोषण ठीक ढंग से नहीं कर पाता और न ही अपनी पत्नी को सुख ही दे पाता है जिसके कारण उसका गृहस्थी भी ठीक से नहीं चल पाता है। पता चलता है कि उसकी पत्नी रोज शाम को दूसरे के पास जाती है। बंशी सबकुछ जानते हुए भी कुछ नहीं कहता है। वह यह सब सहते हुए कहता है कि "मुझ जैसे अंधे के लिए जितना करती है, काफी है। उसके भी तो अरमान हैं। अँधा पति किसे अच्छा लगता है।"[14] यह सब कहते कहते बंशी की आँख भर जाती है। गरीबी इंसान से क्या नहीं करवाता है इसका उदाहरण हम उक्त उद्धरण में देख सकते हैं। बंशी जैसे करोड़ों गरीब परिवार ऐसे जीवन को अभिशप्त हैं।

संदर्भ सूची:

1. अशोक कुमार पाण्डेय, मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धांत, पृष्ठ-90
2. के. एम. अशराफ़, हिंदुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, पृष्ठ-85
3. वही, पृष्ठ-86,
4. ए. आर देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ-141
5. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-147
6. वही, पृष्ठ-265
7. वही, पृष्ठ-268
8. वही, पृष्ठ-281
9. शानी, काला जल, पृष्ठ-50
10. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-17
11. वही, पृष्ठ-24
12. शानी, काला जल, पृष्ठ-248
13. इब्राहीम शरीफ़, अँधेरे के साथ, पृष्ठ-14
14. मेहरुन्निसा परवेज़, आँखों की दहलीज़, पृष्ठ-56

5.3 भारतीयता और लोकतंत्र

'भारतीयता' अर्थात भारत के प्रति समर्पण भाव रखना। एक ऐसा विचार जो भारत से हर प्रकार से जुड़े होने का बोध कराता हो। भारतीयता का पर्याय 'राष्ट्रवाद' से है। राष्ट्रवाद अर्थात एक ऐसे स्वतंत्र राष्ट्र की परिकल्पना जो जाति, संस्कृति और भाषाई दृष्टिकोण से समान हो। "the desire of a group who share the same race, culture, language, etc. To form an independent country"[1] 'राष्ट्रवाद' को समझने के लिए राष्ट्र को समझना ज़रूरी है। पूरी दुनिया का इतिहास देखने पर पता चलता है कि राष्ट्र के निर्माण के पीछे कई कारक सम्मिलित हैं। राष्ट्रों का निर्माण भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई, नस्ल आदि के आधार पर हुआ है। इसके अलावा धर्म के आधार पर भी राष्ट्र का निर्माण हुआ है। पाकिस्तान का निर्माण भी धर्म के आधार पर ही हुआ था। बाँग्लादेश राष्ट्र का निर्माण भाषा के तर्ज़ पर हुआ था। ध्यातव्य है कि राष्ट्र का आशय उस परिसीमा से है जिसमें एक जैसी संस्कृति, भाषा और जाति के लोग रहते हैं।

राष्ट्र महज एक भौगोलिक परिवेश नहीं है, बल्कि एक जन समूह है जो किसी निश्चित भौगोलिक सीमा के अन्दर रहता है जिसे व्यापक अर्थ में देश कहते हैं। इस समूह के लोग आपसी भाईचारे, समान हितों और समान भावनाओं से युक्त होते हैं। इस समूह में एक-दूसरे के प्रति आदर, और सम्मान की भावना होती है तथा सबको एक सूत्र में बाँधने की परिकल्पना होती है। किसी राष्ट्र में एकाधिक संस्कृति, भाषा और जातिवाद हो सकती है लेकिन उन सभी के मध्य एक ऐसी मानवीय धागा होती है जो समूचे राष्ट्र को एक साथ पिरोए रहती है। एक-दूसरे की संस्कृति का आदर करना और उसे सम्मान देना भारतीयता की पहली कसौटी है। गौरतलब है कि भारतीय संस्कृति दुनिया की महान संस्कृतियों में सबसे उच्चतम और पुरानी (ऐतिहासिक) है। भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की परंपरा रही है। अर्थात भारतीय संस्कृति में पूरे संसार को ही एक परिवार माना है। ऐसे में 'राष्ट्रवाद' भारतीय संस्कृति में एक छोटा और संकुचित शब्द मालूम होता है जिसे देश की सीमा तक सीमित कर दिया गया है। ऐसे राष्ट्रवाद की

परिकल्पना आधुनिकता की देन है जो प्रत्येक देश को अपनी सीमा के अन्दर संकुचित करता है। राष्ट्रवाद की भावना एक ओर अपने राष्ट्र के प्रति समर्पित ज़रूर करता है लेकिन वहीं दूसरी ओर अन्य राष्ट्र के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न करती है। घृणा की यह भावना वर्तमान समय में अधिक सोचनीय होती जा रही है। हम एक ऐसे दौर में जी रहे हैं जहाँ सारे राष्ट्र एक-दूसरे से द्वंद्व कर रहे हैं। एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ लगी हुई है। ऐसे समय में भारतीय साहित्य राष्ट्रवाद को मानवीय दृष्टि से देखने की कोशिश कर रहा है।

दरअसल राष्ट्रवाद एक जन भावना है जो अपने राष्ट्र को अन्य राष्ट्र से श्रेष्ठ बनाने अथवा होने का दावा पेश करती है। राष्ट्रवाद, राष्ट्र के प्रगति अथवा उसकी तरक्की के लिए उन सभी आदर्शों को बनाये रखना भी है जो मानव हित में हैं। राष्ट्रवाद वह भावना है जो किसी राष्ट्र में रह रहे प्रत्येक जन समूह को उस राष्ट्र के प्रति समर्पित करता है, राष्ट्र के हित के लिए अपने प्राणों की भी आहुति देने में संकोच नहीं करता। राष्ट्रवाद वह विश्वास है जो राष्ट्र में रहने वाले सभी लोगों को एकत्रित करता है।

भारतीयता का आशय राष्ट्रीयता से है जो देश की संविधान, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगीत, राष्ट्रीय वीरों, महापुरुषों के प्रति सम्मान का भाव रखता है। भारत की संप्रभुता को बनाये रखना, उसकी अखंडता को बचाए रखना है। कुल मिलाकर भारतीयता वह आत्मगौरव है जो हमें भारत के प्रति आसक्त करता है। भारतीयता का अर्थ भारतीय मूल्यों को अपनाना भी है। सहिष्णुता, अहिंसा, त्याग, उदारता, सयंम आदि भारतीयता के मूल्य हैं। इन मूल्यों के बिना भारतीयता की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारतीयता एक भाव है जो दुनिया के किसी भी देश में भारतीय होने का गौरव प्रदान करता है।

किसी राष्ट्र को मजबूत करने में लोकतंत्र की अहम् भूमिका होती है। 'लोकतंत्र' शब्द को अंग्रेजी में 'डेमोक्रेसी' कहा जाता है। 'डेमोक्रेसी' शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों से बना है। यह दो

शब्द हैं 'डेमोस (demos), तथा क्रेतिया (cretia)। 'डेमोस' का अर्थ है लोक और 'क्रेतिया' का अर्थ है शक्ति या सत्ता। इस प्रकार 'डेमोक्रेसी' शब्द का शाब्दिक अर्थ है लोगों द्वारा चलाये जाने वाला शासन। लोकतंत्र को कुछ विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है-

- "लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन है" - अब्राहम लिंकन
- "प्रजातंत्र वह शासन प्रणाली है जिसमें की शासन शक्ति एक विशेष वर्ग या वर्गों में निहित न रहकर समाज के सदस्यों में निहित होती है" - लॉर्ड ब्राइस
- "प्रजातंत्र शासन का वह रूप है जिसमें प्रभू सत्ता जनता में सामूहिक रूप से निहित हो" - जॉनसन
- "प्रजातंत्र वह शासन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भाग होता है" - सिले
- "प्रजातंत्र वह शासन व्यवस्था है जिसमें जनता का अपेक्षाकृत बड़ा भाग शासक होता है" - ऑस्टिन

संविधान भारत के लोकतंत्र का प्रथम एवं सशक्त स्तंभ है। संविधान भारतीय नागरिक को एक प्रभुतासंपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य प्रदान करता है। संविधान भारतीय नागरिक को समान अधिकार के साथ-साथ स्वतंत्रता, शोषण के विरुद्ध, धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक स्वतंत्रता, शिक्षा का अधिकार एवं संपत्ति का अधिकार आदि प्रदान करता है। लोकतंत्र नागरिक को व्यस्क मताधिकार, स्वतंत्र न्यायपालिका, धर्मनिरपेक्षता भी प्रदान करता है। लोकतंत्र में सभी धर्म के लोगों को एक समान माना जाता है। लोकतंत्र यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी आधार पर किसी के साथ भेद-भाव न हो।

भारत एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न संस्कृति, भाषा और जाति के लोग रहते हैं। भारत एक हिन्दू प्रधान देश है ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि भारत की जनसंख्या में हिन्दू बहुसंख्यक हैं। इसके बावजूद भारत एक धर्म निरपेक्ष और लोकतान्त्रिक गणराज्य है। भारत का

लोकतंत्र दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। किसी देश का लोकतंत्र तभी मजबूत माना जा सकता है जब उस देश के अल्पसंख्यक, दलित, आदिवासी, स्त्री सभी दृष्टि से सुरक्षित हों। भारत इस मामले में बहुत हद तक सफल भी रहा है। परन्तु समय-समय पर हमें इस बात का एहसास भी होता रहता है कि भारत के अल्पसंख्यक विशेष रूप से मुसलमान अपने को सौ फीसदी सुरक्षित नहीं मानते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। दरअसल विभाजन के बाद से ही हिंदूवादी सोच द्वारा मुसलमानों को कहीं न कहीं हेय दृष्टि से देखा जाने लगा था। इसके पीछे अलग-अलग लोगों का अलग-अलग तर्क हैं। कुछ लोगों का यह मानना है कि मुसलमानों ने ही देश का बँटवारा किया था और उस लिहाज से सारे मुसलमानों को पाकिस्तान चले जाना चाहिए था। मगर ऐसा नहीं हुआ, हिन्दुस्तान ने अपने आप को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया और यह निर्णय मानवहित में था। भारत हमेशा से उदार रहा है तथा मानव कल्याण ही भारत का मूल धर्म रहा है। हम सभी जानते हैं कि बँटवारे के बाद ज्यादातर मौकापरस्त एवं संपन्न मुसलमान पाकिस्तान चले गए थे लेकिन निचले तबके के मुसलमान यहीं भारत में ही रह गए थे। उसमें पर्याप्त मात्रा में ऐसे मुसलमान हैं जो वास्तव में भारतीय संस्कृति और भारत की संप्रभुता में विश्वास करते हैं। उन लोगों ने सच्चे अर्थ में भारतीय लोकतंत्र में अपना विश्वास दिखाया। अतः यह कहना कि भारत विभाजन के असली जिम्मेदार सिर्फ और सिर्फ मुसलमान है यह सही नहीं है। इसके पीछे हिन्दुओं की भी भूमिका रही है इस बात से मुँह फेरा नहीं जा सकता है। -"क्या कोई सचमुच कह सकता है कि इसके लिए (विभाजन) लीग या जिन्ना ही अकेले जिम्मेदार थे? अंतिम दशक में एकता की सारी उम्मीदें छोड़ देने के पहले तक उन्होंने इसके लिए कितनी मेहनत की थी। इसके बावजूद मैं कहता हूँ कि इसके लिए मुसलमान भी कम जिम्मेदार नहीं थे। उनकी अदुरदर्शिता तो कुख्यात ही है। लेकिन हिन्दू भी अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकते।"[2] ध्यातव्य है कि हिन्दुओं ने भी विभाजन के लिए मुसलमानों को पृष्ठभूमि प्रदान किया। हालाँकि इसमें मुसलमानों की अधिक भूमिका रही है इसमें कोई दो राय नहीं।

भारतीय लोकतंत्र ने भले ही हिंदुस्तान में मुसलमानों को अन्य धर्मों के अनुयायियों के समान ही संरक्षण प्रदान किया परन्तु स्वातंत्र्योत्तर भारत में मुसलमानों को हमेशा संदेह और घृणा की दृष्टि से देखा गया। हिन्दू मानसिकता वाले विचार ने हिन्दुओं के मन में उनके प्रति एक ऐसे विचार को जागृत रखा जो उनके प्रति एक अलग सोच रखती आई हैं। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हिंदुस्तान के सारे हिन्दू मुसलमानों को संदेह अथवा हेय दृष्टि से देखता है। कुछ अपवाद हमें दोनों धर्मों में दिख जायेंगे लेकिन हमारा सरोकार उन लोगों से नहीं होना चाहिए। इन सबके होने के बावजूद भी हिंदुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे की मिसाले दी जाती हैं। परन्तु यह तो सत्य ही है कि आजादी के बाद मुसलमान नफरत का निशाना बनाया गया। - "पहले मुस्लिम शासन के और फिर देश के विभाजन के कारण। नेताओं के घपलों की कितनी कीमत उन्हें चुकानी पड़ी है। अतीत की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं का सोच पर इतना असर पड़ा है कि आज के मुसलमान इससे बच निकलने की कोई राह नहीं खोज पा रहे हैं।"[3]

मुस्लिम समाज पर लगातार यह आरोप लगते आ रहे हैं कि वे भारत के प्रति समर्पित नहीं है। उनकी देशभक्ति को संदेह की निगाह से देखा जाता है। एक भारतीय मुसलमान के सामने यह कठिन प्रश्न है कि वह अपनी भारतीयता को कैसे प्रमाणित करें। "एक मुसलमान के रूप में और स्वातंत्र्योत्तर भारत में एक मुसलमान के लिए अपनी भारतीयता प्रमाणित करना या कर पाना कितना दुष्कर है यह किसी से छिपा नहीं। देश के लिए जान दे देने के बावजूद उनकी गिनती देशभक्त भारतीय के रूप में न होकर मुसलमान के रूप में ही होगी और मुसलमान होने के नाते देश के प्रति उनकी कुर्बानी भी प्रश्नचिन्हों के घेरे में होगी।"[4] ध्यातव्य है कि हिंदुस्तान में मुसलमान होने की त्रासदी इतनी बड़ी नहीं है जितनी की स्वातंत्र्योत्तर भारत में मुसलमान के रूप में एक संदिग्ध भारतीयता के साथ रह पाने की त्रासदी है। हिन्दुस्तान में एक हिन्दू भले ही गद्दार हो पर उसकी भारतीयता संदेह की दृष्टि से नहीं देखी जाती है। परन्तु मुसलमान गद्दार न भी हो फिर

भी उसकी भारतीयता संदेह की दृष्टि से देखी जाती है। भारत में देशभक्त मुसलमान भी भारतीय न होकर पाकिस्तानी ही माना जाता है। उसे पाकिस्तान का एजेंट बना दिया जाता है।

किसी भी देश में अल्पसंख्यक हाशिये का शिकार बना रहता है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हिंदुस्तान में जिस प्रकार मुसलमान अल्पसंख्यक होने का दंश झेल रहा है ठीक उसी प्रकार पाकिस्तान एवं बाँग्लादेश में हिन्दू। लेकिन किसी समुदाय के चंद साम्प्रदायिक लोगों के कारण उस पूरे जमात की वतनपरस्ती पर सवाल खड़ा करना वाजिब नहीं। अल्पसंख्यक समाज अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ता रहता है, इसमें कोई बुराई नहीं है क्योंकि अस्मिता का प्रश्न किसी समाज के लिए उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि जीवन यापन करने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान। भारतीय समाज में मुस्लिम समाज की अस्मिता संकट में है, जैसा कि पाकिस्तान में हिन्दुओं की। इसीलिए उन्हें लगातार संघर्ष करना पड़ रहा है। सवाल यहाँ यह खड़ा होता है कि भारत में मुस्लिम समाज की अस्मिता संकट में कहाँ से खड़ी होती हुई दिखाई देती है? सुनील यादव के अनुसार "भारतीय मुसलमान की अस्मिता का संकट वहाँ से उभरता है जहाँ से उसे भारतीय संस्कृति से काटकर अलग किया जाने लगता है"[5] अस्मिता के प्रश्नों से जूझते एवं भारतीयता पर उठते सवालों के दंश से उत्पीड़ित मुस्लिम समाज की करुण अवस्था का चित्रण हमें स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के कथा साहित्य में देखने को मिलता है जिसके अगुआ शानी और राही मासूम रज़ा हैं। इसके बाद एक लम्बी परंपरा शुरू होती हैं जिसमें बदीउज़्ज़माँ, इब्राहीम शरीफ़, मेहरुन्निसा परवेज़, नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजूर एहतेशाम एवं असगर वजाहत शामिल हैं। भारतीय मुसलमानों की उपर्युक्त पीड़ा को स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। राही मासूम रज़ा अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में उस दर्द को व्यक्त करते हुए 'आधा गाँव' की भूमिका में लिखा है कि - "जनसंघ का कहना है कि मुसलमान यहाँ का नहीं हैं। मेरी क्या मजाल कि मैं उसे झुठलाऊँ! मगर यह कहना ही पड़ता है कि मैं गाज़ीपुर का हूँ। गंगौली से मेरा संबंध अटूट है। वह एक गाँव ही नहीं है, वह

मेरा घर भी है। घर! यह शब्द दुनिया की हर बोली और भाषा में है और हर बोली और भाषा में यह उसका सबसे खुबसूरत शब्द है। इसलिए मैं उस बात को फिर दुहराता हूँ। क्योंकि वह केवल एक गाँव ही नहीं है। क्योंकि वह मेरा घर भी है। 'क्योंकि'-यह शब्द कितना मज़बूत है। और इस तरह के हज़ारों-हज़ार 'क्योंकि' और हैं और कोई तलवार इतनी तेज़ नहीं हो सकती कि इस 'क्योंकि' को काट दे! और जब तक यह 'क्योंकि' ज़िन्दा हैं मैं सय्यद मासूम रज़ा आब्दी गाज़ीपुर ही का रहूँगा, चाहे मेरे दादा कहीं के रहे हों।"[6] जाहिर है राही जी हिंदुस्तान के तमाम मुसलमानों की इस त्रासदी को स्वयं के साथ भी जोड़कर देखते हैं जिसमें उनकी पीड़ा झलकती है। चूँकि राही जी स्वयं उस समाज से आते हैं और वे इसके द्रष्टा भी हैं और भोक्ता भी।

विभाजन ने हिन्दू-मुसलमान की साझी संस्कृति को नष्ट कर दिया। परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान में रह गए मुस्लिम समाज भारतीय मुसलमान के नाम से जाना जाने लगा। जबकि हिन्दू को कोई भारतीय हिन्दू नहीं कहता है। इनकी मूल त्रासदी यही थी कि इनके प्रति एक मिथ्या धारणा प्रचलित हो गयी कि भारतीय मुसलमान रहता ज़रूर हिंदुस्तान में हैं लेकिन उसका हृदय सदैव पाकिस्तान और तमाम मुस्लिम देशों के मुसलमानों के साथ रहता है। ऐसी परिस्थिति में राही जी ने न केवल उस मानसिकता पर प्रहार किया है बल्कि भारतीय संस्कृति को अपनी लेखनी से जोड़ा और उन साम्प्रदायिक तत्वों को यह बताया कि भारत के मुसलमान को संदेह की दृष्टि से देखना और उनकी राष्ट्रीयता पर सवाल उठाना बेबुनियाद और निंदनीय है। वे मुसलमानों को भारतीय मुसलमान कहने पर ऐतराज़ व्यक्त करते हैं। - "पाकिस्तान का आधार नफ़रत है मैं पाकिस्तान से मुहब्बत नहीं कर सकता। मुझे बहुत बुरा लगता है जब मुझे केवल मुसलमान न कहकर हिन्दुस्तानी मुसलमान कहा जाता है। कोई हिन्दुस्तानी हिन्दू नहीं कहा जाता, कोई हिन्दुस्तानी सिख या हिन्दुस्तानी इसाई नहीं कहा जाता, लेकिन मैं हिन्दुस्तानी मुसलमान कहा जाता हूँ। जैसे मैं हिन्दुस्तानी संस्कृति के सिलसिले की कड़ी ही नहीं हूँ।"[7]

राही जी धर्म और राष्ट्र को अलग-अलग मानते हैं। धर्म को राष्ट्रीयता से जोड़ना उचित नहीं। यह एक सांप्रदायिक सोच है जो राष्ट्र को लाभ नहीं पहुँचाती अपितु क्षति ही पहुँचाती है। धर्म को राष्ट्र से जोड़ने वाले ऐसे धूर्त राजनीतिज्ञों पर कटाक्ष करते हुए राही जी लिखते हैं - "आधुनिक भारत में यह तय करना मुश्किल है कि धर्म ज्यादा बड़ा व्यापार है या राजनीति! लेकिन इन दोनों व्यापारों में चूँकि पैसा स्मगलिंग से भी ज्यादा है इसलिए जिसे देखीये वही धर्म या राजनीति के धंधे में जाने को बेकरार है।"[8] राही जी मानते हैं कि कट्टर धार्मिक प्रवृत्ति के लोग अथवा उसके आड़ में राजनीतिक रोटियाँ सेकने वाले लोग राष्ट्रवादी नहीं हो सकते हैं। ऐसे लोग देश के दुश्मन हो सकते हैं और ऐसे लोगों से देश को बचाने की जरूरत है। राही जी ऐसे लोगों के विषय में कहते हैं कि "वह तमाम लोग इस देश के दुश्मन हैं, जो इस देश को धर्म, भाषा, क्षेत्र और जाति की छुरियों से काटने की कोशिश कर रहे हैं।"[9] ध्यातव्य है कि राही जी उन लोगों में से थे जो देश को सांस्कृतिक और मानवीयता के सूत्रों से बाँधना चाहते थे न कि धर्म और मजहब के आधार पर भारतीयता को चोट पहुँचाना चाहते थे। उनकी भारतीयता विज्ञापन की वस्तु नहीं अपितु जीवन-शैली है। वह किसी कोरी राष्ट्रवाद पर विश्वास नहीं करते थे। उनकी राष्ट्रीयता नुमाइश की चीज नहीं थी और न ही हिंसात्मक तथा साम्प्रदायिक, तभी तो वो कहते थे कि "मेरा देश-प्रेम हिन्दू-मुसलमान दंगे करवाने के लिए नहीं है।...मेरा देश-प्रेम मेरे जीने का ढंग है, मेरे जीने का आधार है।"[10]

राही जी ताउम्र उन नकाब पोश चेहरों को बेनकाब करते रहे जो राष्ट्रवाद की मिथ्या आडंबर ओढ़े अल्पसंख्यकों को हाशिये पर धकेलता रहा और उनकी देशभक्ति को नजरअंदाज करता रहा। उन्हीं के उपन्यास 'आधा गाँव' का एक प्रसंग यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा। फुन्नन मियाँ एक अनपढ़ और जिव्वट किस्म का व्यक्ति है। वह पाकिस्तान और लीग से कोई संबंध नहीं रखता है। स्वाधीनता आन्दोलन से भी उसका सीधा संबंध नहीं रहता है। आजादी को लेकर गंगौली में हुए संघर्ष में तीन लड़के शहीद हुए थे जिसमें एक लड़का फुन्नन का भी था। आजादी

मिलने के बाद जब कांग्रसी नेता बालमुकुन्द उन शहीदों का सम्मान करने आते हैं तब केवल हरिपाल और गोबर्धन नामक दो हिन्दू लड़कों का ही नाम लेता है। लेकिन फुन्नन के लड़का का नाम नहीं लेता है क्यूँकि वह मुसलमान था। फुन्नन इस घटना से दुखी होता है वह आहत स्वर में कहता है "ए साहब ! हिआँ एक ठो हमरहू बेटा मारा गया रहा। अइसा जान रहा कि कोइ आपको ओका नाम ना बताइस। ओका नाम मुन्ताज़ रहा!"[11] यह कितनी हास्यस्पद बात है कि एक शहीद बेटे के पिता को चिल्ला-चिल्ला कर यह कहना पड़े कि मेरे बेटे की शहादत को याद करो। मुसलमानों की इस त्रासदी को शिवकुमार मिश्र शब्दबद्ध करते हुए कहते हैं कि - "सच है कि फुन्नन मियाँ को अपने शहीद बेटे का नाम खुद बताना पड़ता है। क्या आजाद हिंदुस्तान में शहीदों की गिनती करते समय उन्हीं की शहादत को गिना जाएगा जो हिन्दू थे। रामप्रसाद बिस्मिल का नाम लिया जाएगा, हिन्दू होने के नाते-अशफाकुल्ला की फाँसी को महज इसलिए भुला दिया जाएगा कि वह मुसलमान था। फुन्नन मियाँ की यह हार है कि जिन्हें अपने शहीद बेटे का नाम खुद बताना पड़ा।"[12] पाकिस्तान बनने के बाद कुछ लोग पाकिस्तान जाने की बात सोच रहे होते हैं और फुन्नन से भी चलने को कहते हैं लेकिन फुन्नन इनकार कर जाता है वह कहता है - "हम बाल-बच्चे वाले तो जा ना रहे, तेंह जाये की कौन ज़रूरत पड़ गयी? हिआँ मरीहो तो बाप-दादा का पड़ोस मिलिहे और हुआँ मरिहो तो का जाने बग़ल में कौन ससुर की क़बर होए।"[13] जाहिर है फुन्नन मियाँ अपने वतन के प्रति संवेदनशील और अपने पुरखों के प्रति समर्पित है। भारतीयता की इससे बड़ी मिसाल और क्या हो सकती है कि कोई व्यक्ति अपने मृत शरीर को भी अपने पुरखों से अलग नहीं करना चाहते। निस्संदेह भारतीय मुसलमानों की आस्था भारतीय लोकतंत्र में विद्यमान है और उसे भारत से उतना ही लगाव और प्रेम है जितना कि किसी अन्य को है। भारतीयता का प्रमाण देते हुए तन्नु कहता है- "मैं मुसलमान हूँ। लेकिन मुझे इस गाँव से मुहब्बत है, क्योंकि मैं खुद यह गाँव हूँ। मैं नील के इस गोदाम, इस तालाब और इन कच्चे रास्तों से प्यार करता हूँ क्योंकि ये मेरे ही मुख्तलिफ रूप हैं। मैदाने-जंग में जब मौत बहुत करीब आ जाती थी तो

मुझे अल्लाह ज़रूर याद आता था, लेकिन मक्कए-मुअज्ज़मा या कर्बलाए-मुअल्ला की जगह नुझे गंगौली याद आती थी। और मैं यह सोचकर झल्ला जाता था और रोने लगा करता था"[14] निस्संदेह यहाँ तन्नु उस तमाम मुसलमानों के ह्रदय की बात कहता है जिसे भारतीय संस्कृति और लोकतंत्र में विश्वास है। लोग लाख उसके भारतीयता पर सवाल खड़ा कर दे लेकिन सच्चे अर्थों में मुसलमान अपनी धरती अपनी संस्कृति से जुड़े हुए हैं और इससे उसे अलग कर देखना खेत को फसल से अलगाकर देखना होगा। जो मुसलमान इस संस्कृति को तोड़ना चाहते हैं उसे सही मायने में संस्कृति का ज्ञान नहीं है। ऐसे लोग धर्म की कट्टरवादी सोच के तले दबे हुए हैं जिनका विचार भी कट्टर हो चुका है। पाकिस्तान निर्माण के पक्ष में खड़े होने वाले मुसलमानों को तन्नु कहता है कि "नफ़रत और ख़ौफ़ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज़ मुबारक नहीं हो सकती। पाकिस्तान बन जाने के बाद भी गंगौली यहीं हिंदुस्तान में रहेगा और गंगौली फिर गंगौली है। तब अगर गयवा अहीर, लखना चमार और छिकुरिया भर ने आपसे पूछा कि उन्होंने तो आपसे कभी दुश्मनी नहीं की थी, फिर आपने पाकिस्तान को वोट क्यों दिया, तो आप क्या जवाब देंगे?"[15] गौरतलब है कि राही साझी संस्कृति के संवाहक रहे हैं। वे भारतीयता के पक्षधर रहे हैं। उन्हें पाकिस्तान का बनना एक बेहूदी और अमानवीय कुकृत्य लगा। राही अपने उपन्यासों में यही दिखाने की कोशिश करते रहे कि सामान्य भारतीय मुसलमान पाकिस्तान के पक्ष में नहीं था। आजादी के बाद रह गए मुसलमान पूरी तरह से भारतीय संस्कृति का अंग है और उसकी भारतीयता पवित्र गंगा जल के समान है।

राही जी की ही तरह बदीउज़्ज़माँ जी भी भारतीयता के घोर पक्षधर थे। उनके साहित्य में भारतीयता की गहरी भावना नज़र आती है। वे धर्म को ज़रूर मानते थे लेकिन रूढ़ हो चुकी धार्मिक मान्यता को वो नकारते थे। भारतीय लोकतंत्र में उनका अपार विश्वास था। उनके साहित्य में वर्तमान भारत की विसंगतियाँ, विभाजन से उपजी त्रासदी, बदलते मूल्य परिवर्तनों का मानवीय जीवन पर पड़ रहे उसके असर को दिखाया है। बदीउज़्ज़माँ को पढ़ते हुए सहज ही उनके मानवीय

सरोकारों को समझा जा सकता है। उनका साहित्य महज कोरी बात करने का साधन नहीं था बल्कि एक ऐसे विचार का प्रसार है जो मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। मनुष्य के भीतर से धार्मिक कट्टरता को निकाल फेंक उसके अन्दर मानवीय गुणों को भरता है। अपनी मिट्टी और अपने वतन के प्रति संवेदनशील एवं प्रेम के भाव को जागृत करता है। देश के प्रति उनकी इस भावना को मुंजाजी ने लिखा है। - "इनका समग्र कथा-साहित्य हिन्दू-मुस्लिम धर्म-विभेद और साम्प्रदायिकता की खाई को पाटकर मानवीय-मूल्यों की प्रतिष्ठापना करता है। वर्तमान में मनुष्य के अपनी मिट्टी से टूटते रिश्ते को फिर से जोड़ने का काम करता है। इसलिए यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि, 'कथाकार बदीउज़्ज़माँ' अपनी मिट्टी से जुड़े कथाकार ही नहीं बल्कि भारतीयता के पक्षधर हैं।"[16] गौरतलब है कि आजादी के बाद मुसलमानों को राष्ट्रीयता के प्रश्नों से गुजरना पड़ा। उन्हें कदम-कदम पर अपनी भारतीयता को सिद्ध करना पड़ा। बदीउज़्ज़माँ को भी उन समस्याओं को सामना करना पड़ा लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि वे एक भारतीय थे और उनकी भारतीयता पाक थी। - "वे भारतीयता के कट्टर समर्थक थे। उन्हें अपने वतन, अपनी जमीन, संस्कृति, अपने लोग आदि से गहरा लगाव था। आज के समकालीनता के दौर में हर मुसलमान की भारतीय राष्ट्रीयता को संशय की दृष्टि से देखा जाता है; किन्तु देश भक्ति की कट्टरता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी।"[17] भारतीय संस्कृति को राही जी दो खाँचों में बाँटकर कभी नहीं देखा। उनका मानना था कि भले ही धर्म के अलग होने के कारण कुछ अलग नज़र आता है लेकिन मूलतः वह सभी एक-दूसरे के करीब हैं।

'छाको की वापसी' उपन्यास में भारतीय संस्कृति का उदात्त चित्रण हुआ है। अक्सर लोग धर्म को ही संस्कृति समझ लेते हैं लेकिन ऐसा नहीं है। संस्कृति वह आधार है जिसपर धर्म टिका हुआ है। जिस दिन यह आधार टूटेगा धर्म विनष्ट हो जायगा। इसलिए धर्म को बचाने के वजाय संस्कृति को बचाना ज्यादा जरूरी है। जिस प्रकार गंगा को साफ़ करने के वजाय उसे गन्दा करने से बचना चाहिए। हम किसी के हाथ में बन्दुक की नोंक पर भारतीय झंडा नहीं थमा सकते। हमें

उसके लिए विश्वास और लोकतंत्र को मजबूत करना पड़ेगा। जिस दिन यह विश्वास अटूट होगा उस दिन से हमें किसी की भारतीयता पर शक नहीं होगी। हमारी संस्कृति गंगो-जमुनी तहज़ीब की है जो हमें भाईचारे के सूत्र में बाँधे हुए है। इसे और मजबूत करना होगा। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकार इसी सूत्र को मजबूती प्रदान करने की कोशिश करते हैं। 'छाको की वापसी' में जब पाकिस्तान जाने के संदर्भ में छोटी अम्मा से पूछी जाती है तब वह जो जवाब देती है वह भारतीय संस्कृति को दर्शाती है "पूछा गया है तो लिख दीजिए कि हमें पाकिस्तान-वाकिस्तान नहीं जाना है। हम क्यों अपना घरबार छोड़ कर परदेस जाएँ?"[18] वास्तव में सामान्य व्यक्ति का पाकिस्तान से रागात्मक संबंध नहीं था। इनकी भावना अपनी मिट्टी से जुड़ी हुई थी। छोटी अम्मा के उपर्युक्त जवाब से हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि पाकिस्तान विमर्श से उनका कोई संबंध दूर-दूर तक नहीं दिखता। उनकी आस्था भारतीयता और लोकतंत्र में विद्यमान है। छोटी अम्मा भारतीयता की मिशाल पेश करती हुई थोड़ी सी तरक्की के लिए वतन छोड़ने वालों को कहती हैं। - "ऐसी तरक्क़ी किस काम की जिसमें आदमी को अपना देश और घर छोड़ना पड़े। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। ना भाई ऐसे दो पैसों से घर का एक पैसा ही भला। भाड़ में जाए ऐसी तरक्क़ी।"[19] इसी तरह जब छोटे अब्बा पाकिस्तान में बीमार हो जाते हैं और जीवन के अंतिम समय में पहुँचते हैं तब वह भारतीय जमीन को तलाशते हैं। उस संस्कृति को याद करते हैं जिनमें उनका जन्म हुआ था। उनकी आखिरी अभिलाषा यही होती है कि उनके मृत शरीर को भारत की पुन्य भूमि में अपने बड़े भाई साहब के बगल में दफ़न किया जाए। "अब्बा के आखिरी अलफ़ाज थे-मुझे गया ले चलो, भैया के पास ही दफ़न करना मुझे। लेकिन यह कैसे मुमकिन था?"[20] लेकिन हबीब भाई के लिए अब वह मुमकिन नहीं था चूँकि वह भारत से उखड़ चुका था। यहाँ की संस्कृति को छोड़ कर भाग गया था। छोटी अम्मा की तरह गाँधी भाई की भी भारतीयता में अगाध श्रद्धा है। वह ताउम्र भारतीय संस्कृति के संवाहक के रूप में कार्यरत रहे। भारत छोड़कर जाने वालों को वे कहते थे। - "ये लोग अपनी जमीन और हवा के लिए तरसेंगे। इन्हें वतन कभी नसीब नहीं होगा।

इन्हें मालूम नहीं उन्होंने कैसी नायाब दौलत खो दी है।"[21] यह बात अलग है कि गाँधी भाई जैसे देश भक्त मुसलमान न हिन्दू के रह जाते हैं न मुसलमान के। मुसलमान की नज़र में वह काफ़िर हो जाता है और हिन्दू कभी मुसलमान को अपनाते नहीं। गाँधी भाई जैसे मुसलमानों का हस्र दुर्भाग्यपूर्ण है। तमाम उम्र इन साम्प्रदायिक विचार से लड़ते हुए उन्हें एक दिन इनका शिकार बनना ही पड़ता है।

छाको के पिता खलीफा एक ऐसे मुसलमान है जो अपनी जमीन और अपने वतन के प्रति प्रतिबद्ध है। वे किसी भी सूरत में इसे छोड़ना नहीं चाहते हैं। भारत में रह गए मुसलमानों के प्रतीक के रूप में खलीफा का चित्रण कर लेखक उस मिथ को तोड़ना चाहते हैं जो मुसलमानों को लेकर आम हिन्दुओं में धारणा बनी हुई है कि हिन्दुस्तानी मुसलमान राष्ट्रवादी नहीं है। पाकिस्तान जाने के संदर्भ में खलीफा खाजे बाबू से कहता है कि "पाकिस्तान में हमनी सबका का काम बाबू? पेट भरे को दू मुट्ठी चावल हियाँ ना मिलतई का! दुसरा देस के जाए के ज़रूरत! ऊ तो सुरू से बेकहना है बाबू!"[22] जो मुसलमान मरते दम तक भारत को नहीं छोड़ना चाहता उसकी भारतीयता पर ऊँगली उठाना सरासर नाजायज़ है।

भारतीयता पर उठते सवालों से ताउम्र शानी भी बहुत परेशान रहा करते थे। एक ऐसे मुसलमान जो अपने धर्म के प्रति भी उदासीन न हो जो सारी उम्र भारत की संस्कृति की बात करता हो, जो साल में महज एक या दो बार नमाज पढ़ता हो, उसे पाकिस्तानी जासूस या पाकिस्तानी एजेंट कहना कितना दुर्भाग्यपूर्ण है। इसमें कोई शक नहीं कि शानी राष्ट्रवादी हैं और भारत के प्रति उनका प्रेम निश्छल है। यह बात अलग है कि राष्ट्रीयता के छद्म शोल ओढ़े व्यक्ति की तरह राष्ट्रवाद का ढिंढोरा नहीं पिटते फिरते हैं। लेकिन भारतीय परिस्थिति ऐसी है कि शानी को भी कहना पड़ता है कि- "अगर आप भारतीय मुसलमान हैं और चाहते हैं कि आपकी बुनियादी ईमानदारी पर शक न किया जाय तो यह झुनझुना (राष्ट्रीयता और देश-प्रेम का झुनझुना) बहुत जरूरी है। मैंने देखा है कि इसका असर आपके हिन्दू दोस्तों के कानों पर नहीं, उनकी ज़बान

पर होता है।"[23] गौरतलब है कि भारतीय संस्कृति एकल संस्कृति नहीं है इसके इतिहास में कई संस्कृतियों का आगमान हुआ और वो सारी संस्कृति यहाँ एक-दूसरे को अपनाते गएँ। शानी का मानना है कि अतीत में भले ही वे हिन्दू रहे हों लेकिन वर्तमान में वे मुसलमान है और यह जरूरी नहीं कि भारत में केवल हिन्दू ही रहें भारत हमेशा से लोकतान्त्रिक देश रहा है। शानी का मानना है कि इस देश की मिट्टी में उनका भी खून है और इस लिहाज से वो भारतीय है और किसी को यह हक़ नहीं कि वो भारतीय मुसलमानों से यह कहे कि वह पाकिस्तान चले जाएँ। बकौल शानी- "मैं भी नहीं मानता कि मेरे पुरखे कहीं ईरान-तुरान से आये होंगे, वे वहाँ बस्तर के जंगलों में कहाँ ऐसी-तैसी कराने पहुँचते? हो सकता है वे हिन्दू ही रहे हों। मगर तीन पीढ़ियों से मैं मुसलमान हूँ और वही बने रहना चाहता हूँ। यह मुल्क, यह ज़बान, यह राष्ट्र सिर्फ उनके बाप का नहीं, मेरा भी उतना ही है जितना उनका। मैं उनकी शर्तों और कृपा पर यहाँ का नागरिक नहीं हूँ। क्यों खत्म कर दूँ मैं अपनी आइडेंटिटी...? सिर्फ इसलिए कि मैं अल्पसंख्यक हूँ...मुझसे क्यों माँगी जाती है कि मैं हर बार अपने को साबित करूँ जो वो चाहते हैं?"[24] ध्यातव्य है कि भारतीय मुसलमान भारत में दोहरी मार झेल रहें हैं। वर्तमान समय में भी हिन्दू-मुस्लिम के मध्य एक अनचाहा तनाव बना रहता है जो समय समय पर साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लेता है। इस साम्प्रदायिकता को हवा देने का काम स्वार्थी लोग करते रहते हैं जिसके ऊपर राजनीति की रोटी सेकी जा सके। शानी भारत में रह रहे अल्पसंख्यकों की पीड़ा से पीड़ित थे। शानी के अनुसार इस देश में अल्पसंख्यक होना कितना बड़ा अभिशाप है। - "शानी अपनी और अपने आस-पास की जिन्दगी से झगरते, उससे लगातार बेचैन रहने वाले व्यक्ति थे। उन्हें अपनी अल्पसंख्यकता का गहरा-तीखा अहसास था।"[25]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में मुसलमानों की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति दयनीय एवं सोचनीय रही है। एक तो समाज में कोई भी ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो उन्हें सामाजिक न्याय दिला सके और न ही उनका कोई मार्गदर्शन करने वाले थे। राजनीति में भी उनके प्रतिनिधित्व की

संख्या औसतन बहुत कम थी। इस कारण भी यह समाज पतन होता गया। दूसरी तरफ पाकिस्तान के बन जाने के कारण भी हिन्दुओं के मन में इनके प्रति घृणा का भाव भर गया था जिसके कारण इन्हें हाशिये का शिकार होना पड़ा और कदम-कदम पर इनसे राष्ट्रीयता का प्रमाण पात्र माँगा जाने लगा। इस संदर्भ में शिवचंद प्रसाद लिखते हैं कि - "इस देश में मुसलमानों को कभी नंबर एक का नागरिक सामाजिक तौर पर नहीं माना गया। मैं वैधानिक स्तर की बात नहीं कर रहा हूँ। किसी हिन्दू से राष्ट्रवादी होने का प्रमाण-पत्र कभी नहीं माँगा गया, बेशक वह राष्ट्र को बेच कर खा रहा हो परन्तु मुसलमानों को पग-पग पर यह प्रमाण-पत्र दिखाने की ज़रूरत पड़ती है।"[26]

'काला जल' में शानी ने आजादी के बाद के मुस्लिम समाज के मोहभंग का चित्रण किया है। मोहसिन आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़ कर भाग लेता है। इसके लिए वह अपने स्कूल में यूनियन जैक को जला देता है जिसके कारण उसे स्कूल से निकाल दिया जाता है। यह सब वह जगदलपुर में स्वाधीनता की चेतना लाने के लिए करता है लेकिन अंत में उसे कुछ हासिल नहीं होता, उल्टा वह हाशिये का शिकार हो जाता है। मोहसिन की स्थिति को शब्दबद्ध करते हुए नगमा जावेद लिखती हैं कि-"शानी ने इस तल्ख़ सच्चाई पर से पर्दा उठाया है कि आजादी से पहले नायडू और मोहसिन देश की आज़ादी के लिए कदम से कदम मिलाकर चले-उसी मोहसिन को आजादी के बाद शक की निगाह से देखा जाने लगता है, उसकी वतनपरस्ती संदेह के दायरे में आ जाती है। लेखक ने मुस्लिम समाज की इस त्रासदी को बड़े सांकेतिक ढंग से जतलाया है। क्यों ऐसा हुआ? स्वतंत्रता की खातिर साथ-साथ चलने वाले, कुर्बानी देने वालों की देश भक्ति को तो आज तक शक की नज़रों से देखने की आदत इतने सालों बाद भी बनी हुई है। इसके पीछे कौन सी भावना काम कर रही है?"[27] मोहसिन की जो स्थिति उपन्यास में दिखती है कमोबेस आजाद देश के लगभग मुसलमानों की यही स्थिति थी जो तन मन धन से कांग्रेस और भारतीयता के पक्ष में खड़े थे। परन्तु जब उन्हें दरकिनार कर दिया गया और मुख्यधारा से वंचित कर दिया गया तब उन्हें समझ आया कि आजाद भारत में भारतीयता के लाख पक्षधर होते हुए भी

अल्पसंख्यक महज एक दोहरी नागरिकता के शिकार रहेंगे जिनकी यहाँ नागरिकता तो रहेगी लेकिन उसे कभी जेहनी तौर पर अपनाया नहीं जाएगा। आजादी के बाद की स्थिति को देखकर मोहसिन का भी दिल भर आता है। जब वह देखता है कि जो लोग आजादी की लड़ाई में भाग लेनें के नाम से दूर भागते थे वही लोग अजादी प्राप्त कर लेने के बाद कांग्रेसी टोपी पहनकर अल्पसंख्यकों के मालिक बने फिरते हैं। यह सब देखकर मोहसिन का देशप्रेम पर से विश्वास उठ जाता है और बब्बन से कहना पड़ता है कि "और तुम ताज्जुब न करना, अगर कहूँ कि मुझे इस देशप्रेम में बिल्कुल विश्वास नहीं रहा,"[28] यह चौकाने वाली चीज ही है जिसे शानी पूरी आत्मीयता के साथ अपने उपन्यास में जिक्र करते हैं। यह कोई आम बात नहीं कि जो लड़का अपना सब कुछ बर्बाद कर के देश को आजाद दिलाने की लड़ाई लड़ता है उससे ही आजादी के बाद भारतीयता के सबूत माँगे जाते हैं। मोहसिन हर वह भारतीय मुसलमान हैं जो मोहभंग का शिकार हुआ है। शानी का मानना है कि मोहसिन जैसे लोग आजाद भारत में एक ऐसी जिन्दगी जीने को अभिशप्त हैं जो पूरी तरह से भारतीय नहीं है। उन्हें बार-बार यह एहसास दिलाया जाता है कि वह पाकिस्तान के निर्माण के पक्षधर हैं और उसकी आस्था पाकिस्तान में हैं। लेकिन ऐसा नहीं है, भारतीय मुसलमानों की आस्था भारतीय लोकतंत्र में है। लेकिन जब उसे बार-बार राष्ट्र के नाम पर पीड़ा दी जाएगी तब उसके सूर बदलेंगे ही जिसे हम साम्प्रदायिक समझते हैं। दरअसल वह टिस है जिसे मोहसिन के इस वक्तव्य से समझा जा सकता है। "तुम्हें लगता होगा कि मैं बक रहा हूँ या यह कि मेरी बातों से साम्प्रदायिकता की बू आती है...पर अपने को अच्छी तरह टटोल कर देखो तो ख़ुद भी स्वीकार करोगे। क्या हम सब लोग यहाँ लादे हुए मुगालते में नहीं जी रहे? और जिसे तुम राष्ट्रीयता और इमानदारी समझ रहे हो, क्या वह सिर्फ़ मजबूरी नहीं है?"[29] मोहसिन की यह तड़प जायज है। जब हिंदुस्तान में किसी आम मुसलमान को जिन्ना से और पाकिस्तान से जोड़कर देखा जाता है तब उन्हें कैसा लगता है इसकी कल्पना कोई नहीं करता है। इस दर्द को शानी जैसे अल्पसंख्यक ही समझ सकते हैं। 'काला जल' में यह दर्द मोहसिन का दर्द

नहीं बल्कि पूरे अल्पसंख्यक समाज का दर्द है। मोहसिन इस दर्द को बचपन से झेलता आ रहा था तभी तो वह कहता है। - "स्कूल में लड़के हम लोगों को देखकर ताने कसते कि "भेजो सालों को पाकिस्तान, बाँधों सालों को जिन्ना साहब की दुम से..." और मुझे तब यह सोच कर रोना आता था कि लोग हमें बेईमान क्यों समझते हैं। हमारा दोष क्या सिर्फ़ यही है कि हमने मुस्लिम परिवार में जन्म लिया है?"[30] मोहसिन अपने ऊपर होते अत्याचार को देखकर पाकिस्तान भागने का मन बना लेता है। भारतीय लोकतंत्र पर से उसका विश्वास उठ जाता है। जब उसकी भारतीयता का कोई मोल नहीं रह जाता है। लेकिन शानी को भारतीय संस्कृति और भारतीय लोकतंत्र में पूरा विश्वास है वह इस मिट्टी को छोड़ना नहीं चाहते हैं। इसीलिए मोहसिन जैसे भटकते अल्पसंख्यकों को भारतीय संस्कृति और भारतीय लोकतंत्र का महत्व बताते हैं। यह भी बताने की कोशिश करते हैं कि भारत की संस्कृति अन्य देशों की संस्कृति से धनि है इसीलिए वह पलायन के पक्ष में नहीं हैं। मोहसिन की जाने की इच्छा पर बब्बन कहता है कि- "चलो, अच्छा है, जाना ही चाहते हो तो अभी न सही, फूफी को दफ़न करके चले जाना। लेकिन पाकिस्तान पहुँचने के बाद भी अगर तुम्हें लगा कि ठगे गये, तो फिर कहाँ जाओगे – अरब या इरान?"[31] शानी यहाँ स्पष्ट करना चाहते हैं कि वह पलायनवादी नहीं हैं। अपितु भारतीय हैं और भारतीय लोकतंत्र के प्रति समर्पित हैं।

इब्राहीम शरीफ़ के उपन्यास 'अँधेरे के साथ' में भी भारतीयता और लोकतंत्र की झलक देखने को मिलती है। कथानायक पूरे उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ लड़ता है, उसका विरोध करता है। मजहब के नाम पर उसे लोकतंत्र के साथ खिलवाड़ करने को कहा जाता है लेकिन वह ऐसा नहीं करता है। गाँव के चेयरमेन उसे वोटर लिस्ट में से हिन्दुओं के नाम काटकर मुसलमानों के नाम जोड़ने का काम देता है लेकिन कथानायक उस काम को न कर भारतीयता का प्रमाण देता है। "तू जानती है, उसने मुझे क्या काम दिया था...चुनाव में वोट देनेवाले लोग हैं न...उन लोगों के नामों में हेर-फेर करने का...यह समझ, जितने हिन्दू हैं न...उनमें से कई लोगों के

नाम काट दूं...और मुसलमानों के कई झूठे नाम जोड़ दूं..वह लिस्ट सरकार में पास करवाकर अगले चुनाव में फिर चेयर मैन बनना चाहता है...तू ही बता ऐसा काम कैसे किया जाय?"[32] कथानायक के इस सोच से यह मालूम होता है कि वह भारत के लोकतंत्र के प्रति कितना समर्पित हैं। जो लोग मुसलमानों की वतनपरस्ती पर सवाल उठाते हैं उन्हें ऐसे मुसलमानों को याद करना चाहिए जिसमें भारतीयता कूट-कूट कर भरी है। इब्राहीम शरीफ़ यहाँ उन लोगों को आईना दिखाने की कोशिश करते हैं जो साम्प्रदायिक सोच रखते हैं तथा अल्पसंख्यकों को हमेशा संदेह की दृष्टि से ही देखते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मुस्लिम समाज के तमाम विषयों को साहित्य में जगह दी है। उक्त अध्ययन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम समाज में भी जातिगत संरचना व्याप्त हैं जिससे खासकर अरजाल वर्ग के मुस्लिम समाज को भेदभाव का सामना करना पड़ता है। इस समाज में भी वर्ग के आधार पर व्यक्ति बंटे हुए हैं जिनका चित्रण उपन्यासों में सहज ही देखा जा सकता है। इन लेखकों ने मुस्लिम समाज पर उठते भारतीयता के प्रश्न को भी गंभीरता से उठाया है और यह दिखाने की कोशिश की है कि मुस्लिम समाज किसी भी प्रकार से भारत के विरोधी नहीं है उनकी आस्था हिंदुस्तान में बस्ती है और वे भी वतन से उतनी ही मुहब्बत करते हैं जितनी भारत के अन्य नागरिक करते हैं।

संदर्भ सूची:

1. oxford dictionary, Wikipedia
2. (सं) राजकिशोर, भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृष्ठ-52
3. वही, पृष्ठ-52
4. शिवकुमार मिश्र, साम्प्रदायिकता और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ-87
5. सुनील यादव, भारतीय मुसलमान मिथक, इतिहास और यथार्थ, पृष्ठ-63
6. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-290
7. राही मासूम रज़ा, सिनेमा और संस्कृति, पृष्ठ-124
8. राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम, पृष्ठ-10
9. वही, पृष्ठ-62
10. वही, पृष्ठ-62
11. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-287
12. शिवकुमार मिश्र, साम्प्रदायिकता और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ-90
13. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-294
14. वही, पृष्ठ-250
15. वही, पृष्ठ-251
16. (सं) एम. फिरोज खान, राही मासूम रज़ा और बदीउज़्ज़माँ: मूल्यांकन के विविध आयाम, पृष्ठ-227
17. वही, पृष्ठ-235
18. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-19
19. वही, पृष्ठ-19
20. वही, पृष्ठ-164

21. वही, पृष्ठ-183

22. वही, पृष्ठ-69

23. शानी, एक शहर में सपने बिकते हैं, पृष्ठ-46

24. (सं) जानकी प्रसाद शर्मा, शानी आदमी और अदीब, पृष्ठ-14

25. वही, पृष्ठ-27

26. (सं) एम. फिरोज खान, हिंदी के मुस्लिम कथाकार शानी, पृष्ठ-77

27. वही, पृष्ठ-123

28. शानी, काला जल, पृष्ठ-291

29. वही, पृष्ठ-291

30. वही, पृष्ठ-292

31. वही, पृष्ठ-292

32. इब्राहीम शरीफ़, अँधेरे के साथ, पृष्ठ-43